मृगतृष्णा
ओम प्रकाश मिश्र
८१३.३१
ओम/मृ

श्री ओम प्रकाश मिश्र बहुमुखी प्रतिभा के दृष्टि संपन्न रचनाकार हैं। इस कथा-संग्रह के पूर्व उनका एक उपन्यास और एक कविता-संग्रह प्रकाशित होकर पाठक वर्ग में खासा चर्चित हो चुका है। कहने का आशय यह कि उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में महारत हासिल की है और उनसे पाठक-वर्ग को एक अपेक्षा सदैव बनी रहती है। श्री ओम प्रकाश मिश्र के बहुत से अनुवाद और लेख अभी तक फुटकर रूप में तमाम साहित्यिक पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं।

प्रस्तुत कथा-संग्रह की अनेक कहानियाँ इससे पूर्व हिंदी की विभिन्न प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हो चुकी हैं। ओम प्रकाश हिन्दी के कुछ इने-गिने युवा साहित्यकारों में से हैं जिनके यहाँ न केवल 'कथ्य' की नवीनता पाई जाती है बल्कि उनकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि कथ्य से ही शिल्प उद्भूत होता है और एक ऐसी भाषा-रचना के पूरे तंतुजाल को विकसित कर संपूर्णता प्रदान करती है जिसमें कथ्य-शिल्प और भाषा की घुलनशीलता बहुत ही सहज भाव से पाठक के मन पर एक ऐसा प्रभाव छोड़ जाती है जिसे जल्दी से भुला पाना संभव नहीं होता। हमें उनके भविष्य से बहुत सी आशाएँ हैं।

मृगतृष्णा

ओम प्रकाश मिश्र की कहानियाँ

मृगतृष्णा

ओम प्रकाश मिश्र

परिमल प्रकाशन
१७, एम० आई० जी०, बाघम्बरी आवास योजना
अल्लापुर, इलाहाबाद-२११ ००६ फोन—६६१७७१

ISBN 81-86298-09-6

प्रकाशक

परिमल प्रकाशन

१७, एम० आई० जी०

बाघम्बरी आवास योजना

अल्लापुर, इलाहाबाद-२११ ००६

□

मुद्रक

एडवांस क्रियेटिव सर्विसेस

इलाहाबाद-२११ ००२

□

लेज़र कम्पोजिंग

प्रयागराज कम्प्यूटर्स

१३, मोतीलाल नेहरू रोड

इलाहाबाद फोन : ६००५९२

□

आवरण

इम्पैक्ट, इलाहाबाद

□

प्रथम संस्करण

१९९५ ईसवी

□

□

मूल्य

पचास रुपये

रवीन्द्र कालिया

एवं

विभूति नारायण राय

के लिए

क्रम

•
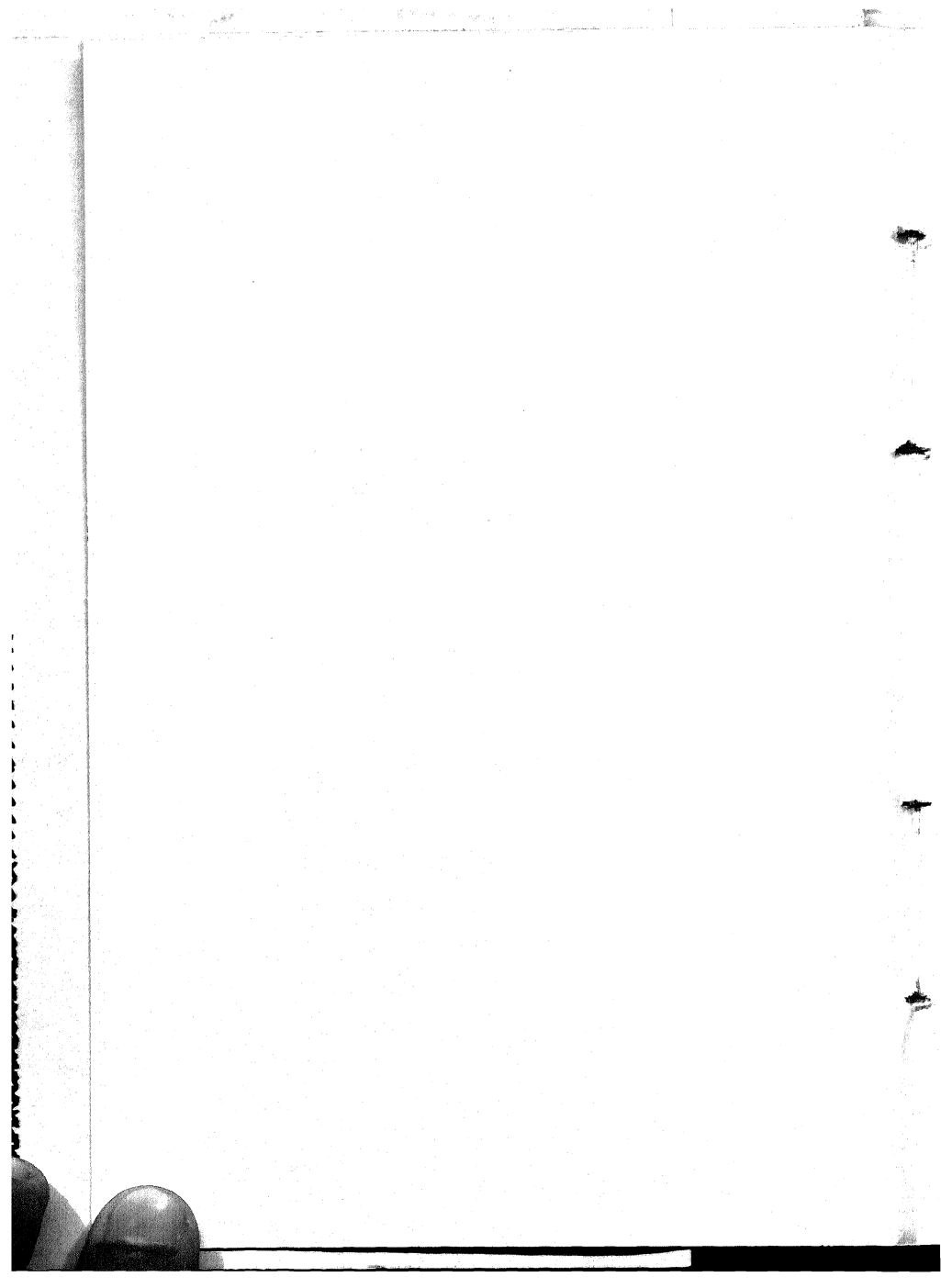
फैसला

"अम्मा। मास्टर साहब कह रहे थे कि अगर इस महीने फीस न जमा किया तो हांईस्कूल की परीक्षा का फार्म कैसे भर पाओगे ?"..... धीर की अम्मा बस गहरे सोच में डूब गयी। किसी प्रकार भोजन का जुगाड़ हो पाता है। कुछ मदद मायके से मिल जाती है, कपड़े-लत्ते की। अब दवा-दारू और फीस, किताब-कापी का इन्तज़ाम कैसे हो ? धीर के बाबू तो पिछले कई साल से आये नहीं। कोई मनीआर्डर, कोई चिट्ठी तक नहीं.....

□

कोई सत्रह-अठारह साल पहले चन्दा की शादी हुई थी। उस समय धीर के बाबू (यानी पिता) बी० ए० में पढ़ते थे। एक साल के बाद धीर पैदा हुआ था। फिर धीर के बाबू शहर में रहकर एम० ए० की पढ़ाई करने लगे थे। दो साल बाद कम्पटीशन का इम्तहान पास करके डिप्टी कलेक्टर हो गये थे।

ट्रेनिंग पर जाते समय चन्दा ने अपना चोरौंधा (छिपाया हुआ रुपया) तक धीर के बाबू को दे दिया था। उस समय ट्रेनिंग के दौरान धीर के बाबू की चिट्ठियाँ महीने में कोई दो बार आ जाती थीं। मनीआर्डर हर महीने पाँच सौ का आ जाता था। आराम से काम चल जाता था।

धीरे-धीरे चिठ्ठियों का आना कम हो गया। लेकिन मनीआर्डर का पैसा नियमित रूप से आता रहा।

चन्दा को उम्मीद थी कि अफसर हो जाने पर धीर के बाबू उसे व धीर को साथ ले जायेंगे। पर इसी बीच धीर की दादीं ने इस कार्यक्रम को स्थगित करा दिया।

अब धीर प्राइमरी स्कूल से कक्षा पाँच पास करके कस्बे के जूनियर हाईस्कूल में जाने लगा था और यही वह साल था जब मनीआर्डर का आना बन्द हुआ। अब कपड़े-लत्ते, फीस, किताब-कापी का खर्च और उधर से धीर के बाबू के मनीआर्डर बन्द हो गये।

चन्दा ने अपने एक भाई के साथ धीर के बाबू के पास लखनऊ जाने का मन बनाया था। इसी बीच धीर के बाबू एकाएक गाँव आ गये और दो हजार रुपये दे गये। साथ ले जाने के सवाल पर खेती-गृहस्थी की देख-रेख का बहाना बनाकर टाल गये।

अब मनीआर्डर नहीं आते थे। कोई रिश्तेदार वगरैह गाँव आ रहा होता तो धीर के बाबू पैसा भेज देते। जो कई महीने चल जाता था।

चन्दा अभी भी लखनऊ जाकर बसने व सुख-समृद्धि से रहने के सपने देखती रहती।

यह सपना शायद लम्बा ही चलता, इसी बीच चन्दा के छोटे भाई किसी काम से लखनऊ गये। वहाँ किसी परिचित के जरिए मालूम हुआ कि धीर के बाबू ने दूसरी शादी कर ली है। चन्दा के भाई को बर्दाश्त न हुआ, वह सीधा डिप्टी कलेक्टर साहब के घर ही चला गया। खूब खरी-खोटी सुनाई। मुकदमे की धमकी भी दी। सारे प्रकरण पर डिप्टी कलेक्टर साहब मौन साधे रहे।

चन्दा के भाई को यह भी पता चला कि धीर के बाबू ने किसी बड़े अफसर की बेटी से शादी रचा ली है। बड़ी मात्रा में दहेज भी पाया है

अपने विवाहित व बाल-बच्चेदार होने की बात को छिपाकर यह शादी करने में धीर के बाबू सफल हुए थे। नई शादी करने के बाद उनकी नयी पत्नी रुपये-पैसे पर पूरा नियन्त्रण रखने लगी थी।

भाई वहाँ से चन्दा के पास आया। मुकदमे व तरह-तरह की बातें करने लगा। चन्दा सिर्फ रोती रही। कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की।...... दुनिया में आशा और उम्मीद के भरोसे ही कोई कष्टप्रद दिन काट सकता है। चाहे नाम का ही भरोसा क्यों न हो ? आशा और उम्मीद के भरोसे, एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना में खोया व्यक्ति, वर्तमान के अनन्त कष्ट भोग सकता है, बर्दाश्त कर सकता है। परन्तु आशा का टूट जाना तो बड़ा ही घातक है। उस पर चन्दा पर तो विपत्ति का पहाड़ ही टूट गया था। आँख के आगे अन्धेरा ही अन्धेरा था। कोई आशा नहीं, कोई उम्मीद नहीं।

सधवा होकर भी एक वास्तविक विधवा का जीवन बहुत ही जटिल होता है। दुनिया को दिखाने के लिए चन्दा सिन्दूर लगाती थी, चूड़ियाँ भी पहनती थी। पर मन करता था कि सिन्दूर पोंछ डाले, चूड़ियाँ तोड़ डाले और लखनऊ जाकर धीर के बाबू के बाल नोंच डाले।...... लेकिन चन्दा मन ही मन कुढ़ती और पति के लम्बे जीवन के लिए तीज का निर्जल व्रत रखती थी।

घर की अर्थव्यवस्था तो बिल्कुल जर्जर हो चुकी थी। कुल दो बीघा जमीन पर खेती हो सकती थी। बाकी बाग थी। बाग से कोई फायदा न था। गर्मी में किसी-किसी साल कुछ आम मिल जाते थे जिनसे अचार व अमावट बना लेती थी।

धीर के बाबा तो बहुत पहले स्वर्ग सिधार गये थे। उसकी दादी के रहते, चन्दा को उसकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। धीर की दादी के न रहने पर चन्दा को सारी जिम्मेदारी निभानी पड़ी।

एक जवान औरत के लिए इतने बड़े गाँव में, एक बेटे के साथ रहना कितना कठिन था, यह चन्दा ही जानती थी। गाँव के आवारा लड़के उसे घूरते रहते थे। गाँव के प्रधान जी तो उससे बात करने का बहाना तलाशते रहते थे। जब भी उनके ट्यूबवेल से पानी माँगने जाती तो प्रधान जी दाँत-निपोर कर बतियाते, जानबूझकर धीर के बाबू का हालचाल पूछते। चन्दा किसी तरह इधर-उधर का जवाब देती रहती।

अब एक बेसहारा जवान औरत (जो दुनिया के लिए सधवा किन्तु अपने हृदय में वस्तुतः विधवा थी) के लिए खेती-बारी करना कितना कठिन था। बिना किसी से मदद लिए काम भी नहीं चलता था और किसी के पास बार-बार जाने पर, गाँव वाले इधर-उधर की बातें बनाते थे।

कुल मिला-जुलाकर चन्दा का जीवन अंतहीन संघर्षों का जीवन था।

□

आज धीर के यह कहने पर कि पैसे के बिना वह हाईस्कूल का फ़ार्म ही नहीं भर पायेगा, चन्दा का मन धीर के बाबू के प्रति क्रोध व घृणा से भर गया। इतने दिनों से लगातार भरते जा रहे क्रोध व घृणा के भावों को वह झेल रही थी और किसी से भी, यहाँ तक कि धीर के सामने भी व्यक्त नहीं करती थी। परन्तु अब उसके एक मात्र सहारे— अपने बेटे धीर का जीवन अन्धकारमय दिखायी पड़ रहा था।

आज चन्दा के धैर्य का संयम टूट चुका था। उसने मन ही मन फैसला कर लिया था कि अब आर होगा या पार। उसने धीर से कहा, "कल सबेरे ही बस से लखनऊ चलना है। यह पायल ले जाओ और सेठ के यहाँ गहन रख आओ। किराये का इन्तज़ाम हो जायेगा।"______

______"कल ही सारा फैसला तुम्हारे बाबू से करूँगी। मैं तो जीते

जी राँड़ हो गयी हूँ। लेकिन अब तो अपना हक लूँगी, तुम्हें भी तुम्हारा पूरा हक दिलाऊँगी।_______ नहीं तो सही में राँड़ बनना ही मुझे पसन्द है।"

दूसरे दिन सबेरे-सबेरे चन्दा अपने बेटे के साथ, तेज-तेज कदमों से बस स्टेशन की ओर जा रही थी। सूरज की किरणें गरमाई के साथ आना शुरू हो गयी थीं।

□□

बड़े साहब

बड़े साहब आज रिटायर हो रहे हैं। बड़े साहब, कुछ वर्ष पहले तक केवल 'साहब' थे। 'बड़े' की वृद्धि के पीछे कई घटक थे। वस्तुतः उनका प्रमोशन नहीं हुआ था, लेकिन घटनाएँ कुछ ऐसी घूम गयी थीं कि वे साहब से बड़े साहब हो गये। पहले उन्हें बड़े साहब का सम्बोधन थोड़ा अटपटा सा लगता था, क्योंकि जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा वे खुद दूसरों को बड़े साहब कहते रहे थे। एक क्लर्क के रूप में अपनी नौकरी शुरू करने के बाद अपने गुणों की वजह से वे प्रमोशन पाते गये फिर उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। वे जब भी प्रमोशन पाते थे, अपने को नये वर्ग का सदस्य बना लेते थे और पिछले साथियों को अच्छी तरह भूल जाते थे।

लगभग दस वर्ष पहले वे अफसर यानी साहब बने थे। उनके साहब बनने के बाद, उनकी जीवन शैली में आमूल-चूल और गुणात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। हर हफ्ते, 'क्लब-डे' के समय नियमित रूप से पहुँचने लगे। वस्त्र, जूतों आदि से उनका साहबपन प्रदर्शित होने लगा। अपने पुराने साथियों से जो ताल्लुकात थे, उसे वे किसी बुरी घटना की तरह भूलने लगे।

आज बड़े साहब का मन बहुत दुःखी है। वे जिस 'रियासत' के अभी तक एकछत्र मालिक थे, वह कल से बेगानी हो जायेगी।

वस्तुतः वे दुःखी इस कारण भी हो रहे थे कि स्वयं उनका व्यवहार पूरे

स्टाफ के साथ कल तक अच्छा नहीं था। रहम, दया, सौहार्द आदि शब्द उनके शब्द कोष में नहीं थे। अगर वे मुस्कराकर किसी क्लर्क, अधीक्षक या इन्सपेक्टर से बोलते थे, तो केवल उन्हीं लोगों से जो उगाही करके नियमपूर्वक धन पहुँचाते रहते थे। हाँ, अपने उन सेवकों से वे विशेष प्रसन्न रहने थे, जो नये-नये मुर्गे तलाश कर लाते थे। जो भी कार्य सीधे तरीके से या नियमों के अन्तर्गत न हो सकता, उसे कराने में 'बड़े साहब' सिद्धहस्त थे। कुल मिला-जुलाकर सात-आठ आदमी उनके खास थे, जो उन्हें कमाई कराते थे।

पिछले कुछ दिनों से बड़े साहब सामान्य नहीं दिखते थे। जिन लोगों के लिए उन्होंने नियम कानून को ताक पर रखकर कार्य किये, स्वयं भी समृद्ध हुये और उन्हें भी मालामाल किया, वहीं लोग अब धीरे-धीरे उनके पास से दूर हटते जा रहे थे। लाल ने तो पिछले कई महीनों से कोई उगाही ही नहीं दी थी। उनका चपरासी भी अब उनकी ज्यादा परवाह नहीं करता था।

इन सारी बातों से उनकी परेशानी और उद्विग्नता ज़ायज़ थी। लेकिन अपने कार्यालय का सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते, जो सुख-सुविधा भोगने के वे आदी हो चुके थे, उन्हें छूटते देख वे विह्वल हुये जा रहे थे। आफिस की जीप पर वे हमेशा जिस अधिकार से बैठते कि क्या राणा प्रताप भी चेतक पर बैठते रहे होंगे। लेकिन यह चेतक तो बड़े साहब का साथ छोड़ रहा था। अभी तक बड़े साहब का कहीं भी जाने का व्यक्तिगत कार्य रहता था, तो उसी शहर का कोई सरकारी कार्य निकालकर, सरकारी वाहन से चल देते थे। अब उन्हें हर काम के लिए खर्च करके जाना होगा।

अपने शहर में अपने विभाग का आला अफसर होने के नाते, जिले के सभी शीर्षस्थ अधिकारियों के समकक्ष उनका स्तर हो गया था। जिला स्तर की मीटिंग में वे बुलाये जाते थे। वहाँ डी० एम०, एस० एस० पी० व सभी बड़े अधिकारियों से उनकी मुलाकात होती रहती थी। पुलिस, प्रशासन व

अन्य महत्वपूर्ण विभाग के अधिकारियों की कभी-कभार अपने घर पर पार्टियाँ देकर उन्होंने अपनी निकटता बड़े अधिकारियों के मध्य बढ़ा ली थी। अब वो सारा रुतबा खत्म होने को था।

□

'साहब' से 'बड़े साहब' बनने की प्रक्रिया में पिछले वर्ष की एक घटना ने बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया था। लगभग दो वर्ष पहले उनके कार्यालय के ही एक क्लर्क ने उनकी शिकायत सतर्कता विभाग तथा भ्रष्टाचार विरोधी विभाग में कर दी थी। शिकायत में साहब द्वारा की गयी अनेक गम्भीर अनियमितताओं की रिपोर्ट थी। प्रमाण के तौर पर साहब द्वारा दिये गये आदेशों / निर्णयों की फोटोस्टेट प्रतिलिपियाँ भी लगीं थीं। सतर्कता विभाग व राज्य सरकार से साहब को ट्रांसफर करने की बात भी थी। जाँच शुरू होने पर साहब थोड़ा घबड़ाये अवश्य थे, लेकिन अपने तिकड़मों व ऊपर के जोर के बल पर साहब बलशाली व विजयी सिद्ध हुए। जाँच की रिपोर्ट साहब के पक्ष में आयी और शिकायत करने वाले क्लर्क का स्थानान्तरण पहाड़ पर हो गया। इस घटना से साहब की धाक अपने विभाग और कार्यालय में जम गयी। और वे साहब से 'बड़े साहब' बन गये।

'बड़े साहब' बनने के बाद उनकी नौकरी लगभग एक वर्ष बच रही थी। जाँच से बरी होने पर एक नये आत्मविश्वास के साथ वे द्रव्य-संग्रह के काम में जुट गये। वेतन का आधे से ज्यादा वे कागज पर बचा लेते थे। बड़ी मात्रा में जो धन एकत्र किया, उसका उचित उपयोग भी उन्होंने किया। अपना मकान, जो कई वर्षों से डर के मारे नहीं बनवा रहे थे, उसे बनवाना शुरू किया। पाँच लाख से अधिक रुपया लगाकर अपना मकान कुछ महीनों में ही बनवा लिया। इसी बीच अपने बेटे का आर्थिक भविष्य

सुरक्षित करने के लिए शहर में एक दुकान भी खुलवा दी। दबी-दबी जबान से कार्यालय में बड़े साहब के भ्रष्टाचार और धन संचय की चर्चा होती थी, लेकिन खुलकर कभी बात सामने न आयी।

सारी बातें आज सिनेमा की रील की तरह बड़े साहब के दिमाग में घूम रही थीं। लंच का समय था और रोज की तरह वे कमरे में अकेले थे। फल का जूस अभी चपरासी लेकर आया नहीं था। तभी कमरे में सक्सेना जी दाखिल हुए। सक्सेना जी, वही थे जिन्हें बड़े साहब बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे। सक्सेना, उनका आफिस अधीक्षक था। सक्सेना ने एक सीलबन्द लिफाफा साहब को दिया। लिफाफे को खोलकर साहब ने पढ़ा। उसमें लिखा था—"आप पर अपनी आमदनी से अधिक सम्पत्ति जमा करने के आरोप प्राप्त हुए हैं। मामले की उच्चस्तरीय जाँच की जा रही है। अस्तु आपके रिटायरमेंट सम्बन्धी भुगतान भी प्रभावित हो सकते हैं।" पत्र को पढ़ने पर बड़े साहब अपनी रिवाल्विंग कुर्सी पर पसर से गये। उनके मुँह से कोई शब्द नहीं निकला और वे गहरे सोच में डूब गये।........ उनका ध्यान सक्सेना की मीठी वाणी ने तोड़ा, "सर। शासनादेश के बावजूद कार्यभार ग्रहण करने वाले अधिकारी महोदय अभी तक नहीं आये हैं। अब तो कार्यभार छोड़ने का कागज मैं तैयार कर रहा हूँ।........ सर ! आपकी विदाई पार्टी शाम के 5 बजे हम लोगों ने रखी है। उसकी सारी तैयारी हो रही है।"

बड़े साहब सोच रहे थे कि विदाई-पार्टी में वे क्या भाषण देंगे ?

□□

प्रतीक्षा

पंडित राम अधीन आज प्रातः नित्यकर्म से निवृत्त होकर अपनी चौपाल में बैठे हुए चाय आने की राह देख रहे थे, तभी पड़ोस के घुरहू की बहू ने, जो घर में माचिस माँगने आई थी, पंडित जी को सूचना दी कि बाबू मालकिन आज अभी तक सोकर नहीं उठी हैं। पंडित जी घबड़ाकर जल्दी से घर के भीतर भागे और देखा कि उनकी धर्मपत्नी के प्राण पखेरू उड़ चुके हैं। घर के भीतर से लौटकर वे अपनी चौपाल में माटी की मूरत की तरह शान्त बैठ गये। उनका गला भरा हुआ था। उनके जीवन के विगत का इतिहास चल-चित्र की रीलों की भाँति उनके सामने एक-एक कर आने लगा।

□

पंडित जी पच्चासी की आयु पार कर चुके थे। उनकी गृहिणी भी लगभग इन्हीं की आयु की थीं। जब ये बारह वर्ष के थे, तभी उनका विवाह हुआ था। विवाह के तीन वर्ष के बाद उनका गौना हुआ और उनकी धर्मपत्नी अपने मायके से उनके घर आई थी। उनका सफल वैवाहिक जीवन रहा। पिछले कुछ वर्षों से पंडितानी जी की दृष्टि भी चली गयी थी। पंडित जी स्थूल काय होने पर भी अपनी वृद्धावस्था में पत्नी की पूरी देख-भाल करते थे। गाँव में उनके साथ परिवार का अन्य कोई सदस्य नहीं

रहता था। पंडितजी का पाँच पुत्र तथा दो पुत्रियों का भरा-पूरा परिवार था। सभी बेटे शहर में उच्च पदों पर अधिकारी थे। बेटियों की शादी हो गई थी। हालाँकि उनके यहाँ शहर से उनके पुत्र, पौत्र महीने में एकाध बार आ जाते थे।

पंडित जी ने पड़ोसी से पटना में बड़े पुत्र को धर्मपत्नी के स्वर्गवास की सूचना भिजवा दी, फिर वे अपने जीवन के भूतकाल की घटनाओं में खो गये।

पंडित जी का पैतृक जन्म स्थान पटना शहर से लगभग चालीस मील की दूरी पर मकनपुर गाँव था। मिडिल की पढ़ाई पूरी करने के बाद सरकार ने उन्हें शिक्षक का पद दे दिया था। राम अधीन जी को अपने पूर्वजों से लगभग दस बीघे भूमि पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली थी। समीपवर्ती गाँव में उनका ननिहाल था। नाना जी को उनकी माँ के अतिरिक्त अन्य सन्तान न होने के कारण वहाँ की भी चार बीघे भूमि उन्हें मिल गयी थी। अध्यापक का कार्य करने के अतिरिक्त दोनों स्थानों के खेतों से उनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गयी थी, और पास-पड़ोस के गाँवों में उनकी गणना सम्पन्न व्यक्तियों में की जाती थी।

पंडित जी के एक छोटा भाई भी था जिसका विवाह बचपन में ही हो गया था। छोटे भाई की बहू घर आ जाने के पाँच वर्ष बाद दोनों भाई अलग हो गए और स्रोतों का बंटवारा भी हो गया। छोटे भाई के उत्तरदायित्व से मुक्त होने पर पंडित जी अपने परिवार में पूरी तरह केन्द्रित हो गये। धीरे-धीरे उनके परिवार में पाँच पुत्र तथा दो कन्याओं की वृद्धि हुई। बड़ा पुत्र मेधावी तथा परिश्रमी था। बड़े पुत्र ने सभी भाईयों की पढ़ाई में पूरी दिलचस्पी ली और धीरे-धीरे सभी भाई महत्वपूर्ण पदों पर पहुँच गए। बड़ा पुत्र तो लगभग दस वर्ष हुए आयुक्त (कमिश्नर) पद से अवकाश ग्रहण कर पटना में स्थायी रूप से अपने परिवार के साथ रहने लगा। उसके दो भाई डाक्टर हुए। पंडित जी के दो पुत्र जीविका के सिलसिले में सपरिवार अमेरिका चले गए और वहीं बस गए। विदेश से

पुत्रों के पत्र यदा-कदा पंडित जी के पास कुशल-क्षेम जानने के लिए आते रहे। पुत्रियों का विवाह भी अच्छे सम्पन्न परिवारों में हो गया और पंडित जी को उनकी ओर से कोई चिन्ता नहीं रह गई।

पंडित राम अधीन जी जब अध्यापन कार्य में थे, उनके सहयोगी अध्यापकों को उनके भाग्य पर ईर्ष्या होती थी कि पंडित जी के सभी लड़के पढ़ाई में अच्छे निकल रहे हैं और उन्हें अच्छे पद प्राप्त होंगे। समीपवर्ती गाँवों में पंडित जी के भाग्य की सराहना होती थी कि किसी का भाग्य हो तो पंडित राम अधीन जी की तरह जिनके पाँचों पुत्र ऊँचे ओहदे पर पहुँच गए हैं। पंडित जी के पुत्रों ने ग्रामीण जीवन में कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखलाई। पक्की ईंट के चार कमरे जो पंडित जी ने पहले बनवा लिए थे, उसमें कोई और विस्तार उनके बेटों ने नहीं किया।

पंडित जी यह कह कर कि बच्चे पटना शहर में या दिल्ली में कोठी बनवायेंगे, गाँव में बनाने से कोई लाभ नहीं है, अपना मन बहला लेते थे। यद्यपि उनके मन में यह लालसा सदैव बनी रही कि काश सभी लड़के सहयोग कर कुछ बीघे भूमि और खरीद लेते। एकाध बार पंडित जी ने दबे मन से लड़कों से अपने मन की बात कही भी, किन्तु सभीं लड़कों ने हँसकर उनकी बात टाल दी कि गाँव में क्या रखा है। अगर उन लोगों को मकान बनाना है तो वे बड़े शहर में बनवायेंगे। वैसे भी मँहगाई का रोना रोकर वे सभी पंडित जी को समझाते रहते थे कि बाल बच्चों का खर्चा संभालने में ही उन्हें आर्थिक बोझ से दबे रहना पड़ता है।

पंडित जी अपने अध्यापन काल में जो कुछ भी कमा पाए उसे बेटों की शिक्षा पर व्यय कर दिया और पुत्रियों का विवाह किया। बड़े लड़के के अच्छी नौकरी में आ जाने पर एक बार उनकी महत्वाकांक्षा जागृत हुई थी। किन्तु अपने बेटों की नीरसता तथा पिता के प्रति अनासक्त भाव, पंडित जी को एकान्त में झकझोर देता था। उनके बेटों की दृष्टि में उनका स्थान उसके

चपरासियों से ऊपर नहीं था। गाँव से पटना अनाज मँगा लेने के अतिरिक्त पुत्रों का कोई भी संबंध गाँव या माता-पिता से नहीं रह गया था। दो चार दिन ज्वर में पड़े रहने पर भी उनकी दवा के लिए पूछने वाला उनका अपना कोई आत्मीय नहीं था। अपने मातहतों एवं मित्रों के सामने अपने पिता की उपस्थिति से बड़ा पुत्र कतराता था। अन्य पुत्र भी बड़े भाई के पद चिन्हों पर ही इस सम्बन्ध में चलने लगे थे और अपने परिचितों के सामने अपने पिता की उपस्थिति अवांछनीय समझते थे। इस व्यवहार से पंडित जी के भीतर हीन भावना घर कर गयी।

आठ वर्ष पूर्व एक पुत्र के विवाह का दृश्य उनकी आँखों के सामने आज भी है जबकि विवाह के तीसरे दिन घर के नल में पानी न आने के कारण तथा नौकरों के उस समय घर पर न रहने पर उन्हें समीप के कुएँ से आठ दस बाल्टी पानी ले आना पड़ा। नवागता बहू को पानी की फिर भी कमी बनी रही। इस घटना के दूसरे ही दिन पंडित राम अधीन, अपनी पत्नी के साथ अपना बोरिया बिस्तर बाँध कर उदास मन से पटना से अपने गाँव लौट आए।

पंडित राम अधीन की गृहस्थी बनाने में उनकी धर्मपत्नी का कम योगदान नहीं रहा। आम के मौसम में बाग से टोकरी में आम भर कर दिन में कई बार वे ले आतीं। वहाँ से महुआ भी बीन कर ले आतीं। दरवाजे पर पाँच पेड़ महुआ तो वे सूर्य की लालिमा निकलने के पहले ही बीन कर इकट्ठा कर दिया करती थीं। खेती की कटाई, गेहूँ, जौ की फसल की मड़ाई में पंडितानी जी का योगदान पंडित जी से किसी प्रकार भी कम नहीं था वरन् कुछ अंशों में उनकी भूमिका और भी महत्वपूर्ण रहती थी।

पिछले पन्द्रह वर्षों में पंडित जी के परिवार में काफी वृद्धि हुई। पौत्र-पौत्रियों की संख्या दर्जन तक पहुँच गई किन्तु गाँव में उन सबका आना जाना नहीं होता था। जिस पुत्र या पौत्र को राशन की आवश्यकता

होती थी वही गाँव आकर ले जाता था। इधर खेती पर खर्च पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ चला था। खाद, सिंचाई, मजदूरी आदि का भुगतान खेती के बल पर करना पंडित जी के लिए अब संभव नहीं रह गया।

पौत्र-पौत्रियों का विवाह तो अब अधिकतर पटना से ही होने लगा। उनके विवाह के अवसर पर पंडित और पंडितानी जी सम्मिलित होने के लिए पटना चले जाते थे और मांगलिक कार्यों के सम्पादित होने पर वे पुनः अपने गाँव लौट आते थे। परिवार के साथ रहने का अवसर इन मांगलिक उत्सवों को छोड़कर उन्हें जीवन में कभी नहीं मिला।

पं. राम अधीन ने किसी मासिक पत्रिका में पढ़ा था कि विदेशों में वृद्धों के लिए वहाँ की सरकार ने अलग कालोनी बनाई है जहाँ भोजन के अतिरिक्त आवासीय तथा दवा आदि की समुचित व्यवस्था सरकार द्वारा होती है। अपनी या धर्मपत्नी की बीमारी में उन्हें उक्त व्यवस्था के विषय में जिज्ञासा निरन्तर बढ़ती जाती।

बड़े पुत्र ने माता-पिता को अपने साथ पटना में रखने का प्रस्ताव एक बार रखा तो अन्य भाइयों ने यह कहकर विरोध कर दिया कि माता-पिता के गाँव न रहने पर खेत निकल जायेंगे, दूसरे लोग खेतों पर अधिकार कर लेंगे। अतः उनका गाँव पर ही रहना सब के हित में होगा।

पिछले पाँच वर्षों में पंडिताइन की नेत्र ज्योति समाप्त हो गई थी। पंडित जी ने चार वर्षों तक खिचड़ी या चावल दाल पका कर किसी प्रकार भोजन की व्यवस्था चलाई। पाक विद्या में पंडित जी पहले से ही शून्य थे। पिछले वर्ष बीमारी से उठने के बाद तो वे इस योग्य ही नहीं रह गये कि भोजन की व्यवस्था स्वयं कर पाते। लाचार होकर एक पड़ोसी से अनुनय विनय कर दोनों प्राणियों के भोजन की व्यवस्था करानी पड़ी और पड़ोसी के यहाँ से दोनों समय भोजन बन कर आने लगा।

ऐसी स्थिति में भी पंडित जी के परिवार वालों को उनका स्मरण नहीं रहा। पंडित राम अधीन विदेशों में बनी वृद्धों के लिए कालोनी के सम्बन्ध में मन ही मन चिन्तन करते रहते थे और सोचते थे कि अपनी सरकार भी ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं करती। पंडित राम अधीन विचारमग्न हो गए कि धर्मपत्नी के चले जाने के बाद उनसे बातचीत करने वाला, उनके दुःख-सुख में साथ देने वाला अब कोई नहीं रह गया। पैतृक सम्पत्ति की रक्षा के लिए उन्हें गाँव में कब तक रहना पड़ेगा?

□□

यक्ष-प्रश्न

अखबार बाँटने की ड्यूटी खत्म करके बसन्त अपने कमरे में पहुँचा था। घड़ी देखा तो साढ़े नौ बज चुके थे। अब एक घण्टे के अन्दर भोजन बनाना और खाना कोई आसान काम न था। वह भी कोयले की अंगीठी और इस स्टोव पर। स्टोव अक्सर, मुसीबत के समय धोखा दे देता था, नौकरी के ऑफर की तरह। कभी वाशर सिकुड़ जाता था, बसन्त के थके हुए शरीर की तरह। फिर सरसों का तेल, जो अम्मा सब्जी बनाने व सर में लगाने को देती थी, उसे वाशर में लगाकर वाशर का आकार चौड़ा करता। स्टोव पर दाल चढ़ा देता था, फिर अंगीठी पर रोटियाँ सेंक लेता था। सब्जी खाये तो कई दिन बीत गये थे। दाल वह गाँव से ला लेता था, सब्जी खरीदने की स्थिति अक्सर नहीं रहती थी। सब्जी के साथ मसाले वगैरह की झंझट रहती। फिर दालें तो शाकाहारियों के लिए प्रोटीन का सबसे अच्छा स्रोत हैं, समस्या तो केवल पकाने के समय की रहती है। अक्सर कच्ची दाल ही खाकर वह विश्वविद्यालय चला जाता। सरसों का तेल भी सब्जी न बनाने से बच जाता था। पिछले इतवार को वह मूली खरीद लाया था। उसे धोकर खा गया था, भोजन के समय तक रुक पाना संभव न था।

ठीक साढ़े दस बजे, प्रोफेसर सरन की क्लास शुरू होती थी। कानून के छात्रों को प्रोफेसर सरन की क्लास का जितना आकर्षण था, उतना ही प्रोफेसर साहब का खौफ भी था। क्लास में किसी भी छात्र का एक मिनट भी लेट आना उन्हें बर्दाश्त न था। फिर बसन्त तो उनका प्रिय छात्र था।

बसन्त अपनी इमेज उनके सामने खराब नहीं करना चाहता था। इस सत्र के आरम्भ में एक दिन बसन्त को दस मिनट विलम्ब हो गया था। कारण खटारा सायकिल की अगली पहिया का पंचर हो जाना था। फिर पंचर न बनवा कर, सायकिल मिस्त्री के यहाँ रखकर, वह तेज चाल से लगभग दौड़ता-दौड़ता विश्वविद्यालय पहुँचा था। उस दिन शहर की सड़कों की हालत और प्रोफेसर सरन के गुस्से के बारे में सोचता रहा। शहर की सड़कें जो हर बरसात के बाद इतनी खराब हो जाती थीं कि बसन्त बहुत परेशान रहता। सबेरे अखबार बाँटने में, फिर दिन में विश्वविद्यालय आने-जाने में और शाम को ट्यूशन पर जाते समय, बसन्त और उसकी सायकित का सीधा संघर्ष शहर की सड़कों से था। कभी-कभी खिसियाकर मोटे-मोटे ठेकेदारों और इंजीनियरों को मन ही मन गाली देता रहता था। कभी-कभी इन्द्र देव को भी गाली देने का मन करता, फिर एकाएक सोचता, अगर पानी न बरसा तो अन्न कहाँ से पैदा होगा ? अपनी दो-तीन बीघे की खेती तो प्रभु के भरोसे थी। ट्यूबवेल वाले बिना पुराना हिसाब किए उधार पानी देने को तैयार न थे। फिर सोचा, इन्द्रदेव ऐसा क्यों न करें कि शहर में पानी न बरसावें, केवल गाँव में ही बरसावें। फिर इन्द्र देव तो अपनी मर्जी के मालिक हैं, मेरी मर्जी से क्यों चलेंगे ? सोचते-सोचते बसंत ने घड़ी में देखा, दस बज चुके थे। जल्दी-जल्दी दाल जो अभी केवल छिटकी थी, उसे चौड़ी थाली में उड़ेलकर, रोटियाँ उसमें सानकर, निगल लिया। फिर वस्त्र पहनकर अपनी सायकिल पर सवार हो गया। विश्वविद्यालय का रास्ता उसने नापना शुरू कर दिया।

उसे याद आया, जिस दिन वह प्रोफेसर सरन की क्लास में लेट पहुँचा था, कितनी कष्टप्रद स्थिति का सामना करना पड़ा था। पता नहीं क्या सोचकर प्रोफेसर साहब ने उसे क्लास में बैठने दिया और बोले, "बसन्त ! यह आखिरी बार तुम्हें विलम्ब से आने पर भी क्लास में बैठने दे रहा हूँ. इस क्लास के बाद मुझसे मेरे कमरे में मिलना।" उस दिन क्लास में पूरे

समय वह दुःखी रहा। फिर क्लास के बाद, वह प्रोफेसर सरन के कमरे में गया और उन्हें अपनी हालत बतायी। किस तरह क्षय रोग से पीड़ित पिता (बाबू) को दवा, दूध और फल की व्यवस्था करने के लिए, उसे इतना परिश्रम करना पड़ता था। दवा की व्यवस्था ही कठिन हो जाती थी।

□

इस वर्ष बसन्त ने पी० सी० एस० में लिखित परीक्षा पास किया है। पूरे गाँव-गिराँव में बसन्त का नाम हो गया है। मुहल्ले में चाय की दुकान वाला आसानी से उधार देने लगा है और सम्बोधन में यदा-कदा साहब शब्द भी बोलने लगा है। स्वयं बसन्त भी मन ही मन योजनायें बनाता रहता। अम्मा व बाबू को शहर ले आकर एक फलैट में रखने का सपना। बाबू के लिए आवश्यक दवाओं, पौष्टिक आहार, फल, दूध आदि-आदि की अच्छी व्यवस्था। फिर अपना एक स्कूटर होगा। सरकारी जीप भी रहेगी। लेकिन औरों की तरह वह उसका दुरुपयोग नहीं करेगा। तिवारी जी एस० डी० एम० साहब के बच्चे को वह शाम को ट्यूशन पढ़ाने जाता है तो देखता है कि हफ्ते में कम से कम दो-तीन दिन मिसेज तिवारी शॉपिंग करने, साफ्टी खाने, चाट खाने सिविल लाइन जाती हैं। लेकिन बसन्त ने दृढ़ निश्चय किया कि वह अपनी पत्नी को सरकारी गाड़ी का दुरुपयोग नहीं करने देगा। अपने स्कूटर पर बैठाकर बाजार साथ जायेगा। फिर बसन्त को प्राइवेसी पसन्द है। फिर सोचने लगा कि शादी कैसी लड़की से करूँगा ? बसन्त ने जब से हाई स्कूल पास किया है, "देखुहारों" के कारण दो-तीन वर्ष से परेशान रहा। बाबू तो शादी करना चाहते थे, बसन्त की। पर अम्मा ने साथ दिया, बसन्त का। लड़के को अफसर बने बिना शादी नहीं करना चाहिए, मायके के गाँव के कई परिवारों को देखकर यह विचार उन्होंने बनाया था। बी० ए० पास करने के बाद भी एक दो लोग आये थे,

अब तो शादी के लिए कोई "देखुहार" आता ही न था। गाँव के हिसाब से वह शादी के लिए "ओवरएज" हो गया था। केवल शादी ही नहीं, बी० ए० पास करते ही वह सिविल सेवा के लिए भी "ओवरएज" हो गया था। अनपढ़ बाबू ने सही उम्र लिखा कर बसन्त का कैरियर चौपट कर दिया। वर्ना वह सिविल सर्विस में बैठकर, अखिल भारतीय सेवा में आ सकता था। बाबू ने एक ओर उसे आई० ए० एस० की नौकरी के लिए ओवरएज कर दिया तो वह दूसरी ओर विवाह के लिए भी अपनी उपजाति के हिसाब से ओवरएज होता जा रहा था।

शादी के बारे में वह सोचता था, अपनी जाति, उपजाति का कोई बड़ा आदमी, पी० सी० एस० में चयन के बाद जरूर आयेगा। फिर सोर्स की कोई कमी नहीं रहेगी। ट्रान्सफर, पोस्टिंग और प्रमोशन में तो हमेशा जोर चलता है। मनमाफिक पोस्टिंग पाने के लिए हमेशा जोर चाहिए। राज्य सेवा का कोई बड़ा अधिकारी अगर अपनी बेटी या बहन के विवाह का प्रस्ताव लेकर आयेगा तो बाबू को और अम्मा को समझा बुझाकर, शादी तय करा देगा। लेकिन दहेज नहीं लेने देगा। ज्यादा दहेज लाने पर औरतों के दिमाग खराब हो जाते हैं। वे पति पर रोब जमाती है, यहाँ तक कि ड्राइवरों व चपरासियों के सामने भी। पिछले महीने मिसेज तिवारी को तिवारी ने रोका कि सॉफ्टी खाने से टान्सिल खराब हो जाती है। लेकिन मिसेज तिवारी (जो एक बहुत बड़े अधिकारी की पुत्री हैं) चीखकर बोलीं, "यू आर आलवेज सिली,"। गेट पर खड़े ड्राइवर व चपरासी मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे। फिर बसन्त ने सोचा अगर दहेज न लिया तो बड़े अफसर की बेटी को खुश कैसे रखूँगा ? जो रास्ता बचेगा, वह केवल खुले आम घूस लेने का और सरकारी पद के दुरुपयोग का होगा। शादी का ख्याल आते ही बसन्त के मुँह का स्वाद खटमिट्ठा हो जाता था। किसी फिल्मी अभिनेत्री जैसी सर्वांग सुन्दरी पत्नी के निकट रहने का ख्याल, साथ में तिवारी जी की अपनी आँखों देखी व्यथा, उसके मुँह का स्वाद फीका कर

देती थी और वह अक्सर पान खाने चल देता था। पान में यह गुण होता है कि वह एक तरफ तो जीभ व मुँह को स्वादहीनता के परमलक्ष्य की ओर ले जाता है, दूसरी ओर गुस्से में दाँत पीसना सामान्य क्रिया है। गुस्से से पान कूचकर वह जल्दी ही बकरी की तरह चबा लेता था और पी जाता था। कभी-कभी खीझ, क्रोध का आधिक्य होने पर भी पान थूक देता था। जो पैसा वह सब्जी न खरीदकर बचाता था, उसे यदा-कदा पान में व्यय कर देता था। पान खाने जाते समय वह अक्सर शराबियों जैसा मजबूर हो जाता था।

पत्नी से उतर कर जब वह बच्चों पर आता तो यही सोचता कि बच्चों को उसकी तरह तकलीफ न सहनी पड़े। सारी पाठ्य पुस्तकें व तत्सम्बन्धित सामग्री का कोई अभाव न होने देगा। बच्चों के बड़े होने पर वह उन्हें विक्की या स्कूटर उपलब्ध करा देगा, जिससे उनकी सारी ऊर्जा सायकिल चलाने में ही न चली जाये। ट्यूशन उन्हें लगायेगा जिससे किसी गरीब प्रतिभाशाली विद्यार्थी को कुछ सहायता मिल जाये।

□

आज बसन्त का पी० सी० एस० का इण्टरव्यू था। उसने नयी सफेद कमीज, और नयी ही काली पैन्ट, पहनी थी। जूता पुराना था, लेकिन चौराहे के मोची से स्पेशल क्रीम पालिश करा लिया था।

इण्टरव्यू में उससे अशोक का "धम्म", भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति, राज्य सभा के सदस्यों की चुनाव प्रक्रिया, अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय घटना चक्र, न्यूटन का तीसरा नियम.... आदि आदि प्रश्न पूछे गये। आखिर में चेयरमैन महोदय ने पूछ ही लिया, "मि० बसन्त, यह मौका आपका आखिरी मौका है, इसके बाद आप पी० सी० एस० में बैठ नहीं पायेंगे, ओवरएज हो जायेंगे। कल्पना करिए यदि आपका सेलेक्शन न हुआ तो

आप क्या करेंगे?" इस प्रश्न की आशा बसन्त को न थी। यह प्रश्न उसे गोली की तरह लगा और बसन्त एक मिनट के लिए स्तब्ध रह गया। मुँह से कोई आवाज न निकली। फिर थोड़ा रुक कर बोला, "सर, हम गाँव के लड़कों की यही नियति है। हम बड़ी उम्र में शहर आते हैं और जब तक जिन्दगी के बारे में कुछ समझ सकें या सही मायने में गंभीरता से कुछ सोच सकें तब तक ओवरएज हो जाते हैं।" फिर थोड़ा थमकर बोला, "सर यह सेलेक्शन न हुआ तो मेरे कई सपने तो टूटेंगे, लेकिन भविष्य वर्तमान से ज्यादा खराब तो न होगा। एल० एल० बी० कर रहा हूँ, मुंसिफी में बैठूँगा। कुछ करूँगा।"

सेलेक्शन बोर्ड ने निश्चिततः यह प्रश्न मनोवैज्ञानिक परीक्षण की दृष्टि से पूछा था और बसन्त सेलेक्शन बोर्ड के मानस को पढ़ रहा था।

इण्टरव्यू के तुरन्त बाद सर्विस-कमीशन भवन से बाहर निकल कर बसन्त पान की दुकान की ओर चला। जिन लड़कों के इण्टरव्यू अभी होने बाकी थे, वे पीछे-पीछे चले आ रहे थे। वे पूछते थे कि क्या-क्या पूछा गया ? बसन्त पान दबाये धीरे-धीरे यक्ष प्रश्नों के उत्तर सोच रहा था।

□□

मैं आ रहा हूँ

आज मैं यह सोच कर चला हूँ कि दुनिया की सारी दीवारों को तोड़कर तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। जो बन्धन मेरे तुम्हारे बीच में खड़े हो गये हैं उनकी परवाह न करके, बदनामी व शक के खतरे उठाते हुए भी तुमसे मिलूँगा। पता नहीं क्यों, आज सबेरे से ही तुम मेरे मन-मानस पर पूरी तरह से छायी रहीं।

□

जब से तुम मद्रास गयी हो तुम्हारे बैंक के सहकर्मियों से, तुम्हारे पड़ोसी करुणेश से तुम्हारे बारे में पता करता रहा हूँ। कैसी तबियत है ? कब तक लौटोगी ? कभी-कभी करुणेश स्वयं भी टेलीफोन कर देता है। करुणेश तुम्हारा पड़ासी; रिश्ते में भाई और मेरा जिगरी दोस्त है। उसे मेरे मन में उठ रही भावनाओं के ज्वार का अनुमान है। उसे यह भी पता है कि मैं तुम्हें देखे बिना या तुम्हारे बारे में बात किये बिना रह नहीं पाता हूँ।

यह कैसे भूला जा सकता है कि तुमसे मिलने का बहाना ढूढ़ने के लिए ही मैंने तुम्हारे बैंक में अपना एकाउंट खोला था।........ वर्ना रोज चौराहे पर ठीक पौने दस बजे पान की दुकान पर पहुँच जाना क्योंकि तुम रिक्शे पर चौराहे से उसी समय गुजरती थीं। किसी-किसी दिन तुम्हारा

रिक्शा जब समय पर नहीं आता था तो मैं साढ़े दस बजे या ग्यारह बजे तक तुम्हारा इन्तजार करता रहता फिर अपने आफिस में बॉस की कड़ी डाँट-फटकार सुनना पड़ता था।

वैसे मेरे मित्रों के लिए और खुद मेरे लिए भी यह एक अजीब बात थी कि एक शादी-शुदा औरत को देखने के लिए मुझ जैसा सामान्यतः नीरस समझा जाने वाला आदमी रोज नियमित पौने दस बजे चौराहे पर आ जाता था। पता नहीं तुम्हारी सागरीय आँखों का कौन सा आकर्षण खींचता था, कि बस मैं नित्य ठीक समय पर खिंचा हुआ चला आता था चौराहे पर।

कई महीनों की कष्टसाध्य साधना के बाद, एक दिन बालपन जागा था और स्कूटर पर मैंने धीरे-धीरे तुम्हारा पीछा किया था। बड़ा मुश्किल होता है अनुभवहीन आदमी के लिए ऐसा कार्य करना। तुम्हारे रिक्शे का पीछा करते-करते मैं तुम्हारे बैंक तक पहुँच गया। उस दिन तुमने मुझे घूर कर देखा था और बैंक की सहकर्मी महिला से कुछ फुसफुसाई थीं। अंजाम, कई हफ्ते चाहकर भी उस चौराहे पर जाने की मेरी हिम्मत न हुई। फिर एकाएक ख्याल आया कि तुमसे मिलने का जायज बहाना तुम्हारे बैंक में एकाउन्ट खोलकर हासिल किया जा सकता है। बस मित्र करुणेश के सहयोग से बैंक में एकाउन्ट खोला। और फिर तुम तो सेविंग-बैंक-एकाउन्ट ही डील करती थीं।

अब मैं थोड़े-थोड़े से रुपये निकालने जल्दी-जल्दी बैंक जाने लगा। पहले तो तुम्हें कुछ अटपटा सा लगता था, फिर तुमने शायद इसे समझ लिया होगा और एक दिन पूछा था, "आप इतना थोड़ा-थोड़ा पैसा बार-बार निकालते हैं। क्यों नहीं इकट्ठा महीने भर का निकाल लेते ?" मैंने पहले से सोचा हुआ जवाब दिया था, "इससे कुछ बचत हो जाती है।"—— और तुमने मुस्कुरा कर पूछा था, "स्कूटर से यहाँ बार-बार आने का खर्च भी तो जोड़ कर देखिये, क्या बचता है ?"

धीरे-धीरे तुम्हें मेरा बार-बार बैंक आना, कभी-कभार जबरदस्ती बात का कोई बहाना ढूँढ़ कर बात करना,—— तुम्हें कुछ-कुछ आभास होने लगा था।

□

करुणेश के बेटे के मुन्डन के समय पार्टी में तुम्हें देखा था। तुम्हारे अफसर पति से मुलाकात करुणेश ने कराई थी। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ था कि तुम क्यों नौकरी करती हो ? और तुम्हारे पति को या तुम्हें क्या कमी है जो तुम्हें नौकरी करनी पड़ती है। कौन सी आर्थिक त्रिवशता है कि तुम्हें बैंक में क्लर्क की नौकरी करनी पड़ रही है। बाद में पता लगा कि तुम्हारी नौकरी, तुम्हें अपने पिता की सेवाकाल में मृत्यु के कारण अनुकम्पा आधार पर मिली थी। तुम्हारे पिता तुम्हारे ही बैंक में कार्य करते थे। तुम्हारे पति के परिवार वाले, तुम्हारी नौकरी से प्रतिमाह मिलने वाले वेतन से आकर्षित थे। आखिर तुम्हारी ससुराल वालों की निगाह सोने की मुर्गी पर थी। और तुम अपने पिता की विरासत में मिली नौकरी स्वर्गीय पिता से भावनात्मक लगाव के कारण कदापि छोड़ना नहीं चाहती थी।

यदा-कदा अनायास चौराहे पर निश्चित समय पर पहुँच जाना सामान्य सी बात थी। लगातार कई दिन जब तुम दिखायी न पड़ीं तो उस दिन बैंक गया। तुम्हारे एक सहकर्मी ने बताया कि तुम अपने पति के साथ मद्रास गयी हो। तुम्हें हृदय (हार्ट) की बीमारी है। एक वॉल्ब खराब हो गया है। शायद आपरेशन भी कराना पड़े। मेरा दिल धक सा रह गया था। तुमने अपने खराब स्वास्थ्य का एकाध बार जिक्र किया था, जब मेरे कार्यालय में अपनी जमीन पर बनने वाले मकान का नक्शा पास कराने के लिए आई थीं। वस्तुतः बैंक की नौकरी में से समय निकाल कर कहीं जाना बहुत कठिन होता है, यह मैंने उसी समय जाना था, जब तुम्हें अपने प्रस्तावित मकान का नक्शा पास कराने मेरे कार्यालय आना पड़ता था। तुम्हारे पति

ठहरे अफसर, हमारे विभाग के किसी उच्चाधिकारी को टेलीफोन करके संतुष्ट हो जाते थे। तुम्हें बार-बार उस समय मेरे कार्यालय का चक्कर लगाना पड़ता था। मैंने पहले तो सोचा कि अच्छा है कि मुलाकात का मौका तो मिला। बाद में अपने आफिस के साथियों व अफसरों की चुभती नजरों से मेरी परेशानी बढ़ती गयी। बिना "सुविधा फीस" दिये नक्शा पास होते न देख, एक दिन डीलिंक क्लर्क को तुम पाँच सौ रुपया दे आई थीं। जब तुमने आकर मुझे बताया तो मैं आग बबूला हो गया और सीधा उस क्लर्क की सीट पर लड़ने की मुद्रा में पहुँच गया। बात बढ़ गयी। तू-तू मैं-मैं हो गयी। वह बोल उठा, "कौन लगती है तुम्हारी वो", "क्यों मुफ्त में नक्शा पास कराना चाहते हो उसका, क्या मिलेगा तुम्हें।" दोस्तों के समझाने बुझाने पर बहुत मुश्किल से पैसा उसने मुझे वापस दिया और मैं 500 रुपये लेकर चल पड़ा था तुम्हारे घर की ओर। भौंचक्की रह गयी थीं तुम और तुम्हारे पति। बार-बार यही कहा, "क्यों आप इतना परेशान हुए। ऐसे बिना 'फीस' के कहीं नक्शा पास होता है ?" मैंने सगर्व घोषणा कर दी थी कि अब इस नक्शे को मैं पास कराऊँगा। वह भी बिना फीस के।

मुझे भी तुमसे बराबर मिलते रहने का वाजिब बहाना मिल गया। कभी बैंक से पैसा निकालने जाता तो कभी तुमसे नक्शा पास कराने की प्रक्रिया की प्रगति देने के लिए बाहर आकर चाय पीने का आग्रह करता। दो-तीन बार किसी रेस्टोरेन्ट में चाय पी। धीरे-धीरे निकटता बढ़ती गयी। बड़ा मुश्किल हो जाता था, उन दिनों मेरे लिए आफिस में। तेजी से भाग-दौड़ कर नक्शा चार महीने बाद पास करा दिया था और तुमने मुझे आने वाले रविवार को लंच पर बुलाया था। मैं अकेला आदमी, लंच या डिनर का आमंत्रण कैसे छोड़ पाता, वह भी तुम्हारे आमंत्रण को। उस दिन तुम्हारे पति को सुबह की फ्लाइट से दिल्ली जाना पड़ गया था। बच्चे थे और तुम थीं। तुम्हारे बच्चों से परिचय हुआ, उसी दिन पहली बार तुमसे विस्तार से बातें हुईं। मुझे जरा भी अनुमान न था कि तुम अपने अंदर हृदय

का एक खतरनाक रोग पाले हो जिसके लिए आगे तुम्हारे स्वास्थ्य सम्बन्धी इतनी परेशानियाँ आयेंगी।

आरम्भ में, तुम्हारे पति को मेरी दृष्टि में कोई खोट कभी नजर आया हो, ऐसा प्रतीत होता नहीं था। अलबत्ता तुम शायद मर्म कुछ-कुछ समझती थीं। मेरी एकाकी जिन्दगी का जिक्र उस दिन लंच पर आया था और तुमने मुझसे पूछा था, "शादी क्यों नहीं कर लेते।" मैंने अपनी उम्र का जिक्र किया तो तुम कह बैठीं, "कोई बच्चा गोद ले लो।" मैं चुप रहा। शायद मेरी मनः स्थिति तुम समझने लगी थीं।

□

कुछ रिश्ते ऐसे बन जाते हैं, जिन्हें परिभाषित करना बड़ा मुश्किल होता है। मैंने तुम्हें कभी तो चौराहे पर छुप-छुप कर महीनों देखा। जो काम हाई स्कूल-इण्टर में पढ़ते समय मुझे करना था, वह किया इस अधेड़ उम्र में। फिर सम्बन्धों का ताना-बाना ऐसा बुन उठा—बैंक के मेरे कार्य व नक्शा पास कराने का तुम्हारा कार्य—पुल बन गया। मुझे एक बहुत बड़ा सहारा मिला। जिन्दगी में जो कमी बचपन से रही, पूरी होती दिखी। बचपन ही में माँ चल बसी थी। कोई बहन नहीं, भाई नहीं। पिता, दूसरी शादी कर घर में सौतेली माँ लाये थे। सौतेली माँ के व्यवहार से मेरे कोमल मन में सभी औरतों और पूरी नारी जाति के प्रति जो घृणा पैदा हुई थी, उसी ने मुझे शादी न करने का फैसला करने को बाध्य किया था।

लेकिन न जाने क्यों तुमने मेरी विरक्ति को खत्म कर दिया था। उस दिन जब अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से तुमने चौराहे पर देखा था—एक छोटे से एक्सीडेन्ट को। मैं तब से तुम्हारी आँखों के अत्यंत गहरे सागर में डूब गया था। कभी तुममें मैं अपनी स्वर्गीया माँ को देखता हूँ, कभी बिना पैदा हुई बहन, कभी पुत्री, कभी प्रेयसी, कभी मित्र, कभी मार्गदर्शक, कभी शिष्या,

तो कभी सहेली। कभी-कभी सेक्स का अन्तर भी समाप्त हो जाता। यानी "हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति"____ जैसे अनाम सम्बन्ध को भी लोग शक की निगाह से देखने लगे थे।

□

मद्रास जाना कोई मुश्किल काम नहीं। इलाहाबाद से गंगा कावेरी ट्रेन सीधी मद्रास ले जाती है। किराये की भी कोई दिक्कत नहीं है।__ परेशानी है तो यह कि अगर तुम्हें देखने मद्रास तक जाऊँ तो तुम्हारा पति क्या सोचेगा ? कौन लगता हूँ मैं तुम्हारा ? फिर अगर उसने तुम्हें गलत समझा तो मैं अपने आप को माफ नहीं कर पाऊँगा। हार्ट की बीमारी में तो परिवार में सामंजस्य (खासकर पति-पत्नी के बीच) बहुत ही आवश्यक है, दवा से भी ज्यादा। इसलिए मद्रास जा नहीं पा रहा हूँ। एक बार तो छुट्टी भी स्वीकृत करा लिया था, आरक्षण भी करवा लिया था। परन्तु वही लोक-लाज व तुम्हारे पति की शक की सुई की चिन्ता____ लोगों की अनर्गल बातें____

लेकिन आज फैसला अटल है। चाहे तुम्हारे पति जो भी सोचें, लोग चाहे जो भी कहें, आज मैं सारे खतरे उठाकर भी मद्रास जाने वाली गाड़ी में बैठ गया हूँ। मैं आ रहा हूँ____ तुमसे मिलने____ धीरज रखो____ तुम जरूर स्वस्थ हो जाओगी।

□□

निर्विरोध

चौराहे पर कोने की चाय की दुकान पर अनन्त धीरे-धीरे चाय पी रहा था। बगल में राय साहब, भारी भरकम मुँह में दो जोड़ा पान दबाये, स्थानीय समाचार पत्र को पलट रहे थे। उनकी रुचि मंत्रियों के कार्यक्रम व तत्सम्बन्धित स्थानीय समाचारों में अधिक थी। कभी-कभी सिनेमा वाला कालम भी देख लेते थे कि शहर में कौन-कौन सी फिल्में चल रही हैं। वस्तुतः जो भी कुछ उनके लिए महत्वपूर्ण था, वह था चौराहे पर चार लोगों को बताना कि परसों फलाँ मंत्री शहर आ रहे हैं और उनसे मिलने का कार्यक्रम परसों रहेगा। कभी-कभी राय साहब अखबार का वह पन्ना चाय की दुकान से उठा लेते और अपनी छोटी सी हैंड बैग में मोड़कर डाल लेते। अनन्त चाय खत्म करके राय साहब से बोला–'राय साहब ! आने वाले ब्लाक प्रमुख के चुनाव में क्या करेंगे?' राय साहब बोले—'कोई मजबूत प्रत्याशी खड़ा करूँगा और इस बार मैंने कसम खायी है कि अपने किसी आदमी को ब्लाक प्रमुख जरूर बनाऊँगा।'

अनन्त वहाँ से हटने के बाद दिन भर यही सोचता रहा कि राय साहब को क्यों न समझाऊँ कि मुझे ही ब्लाक प्रमुख का चुनाव लड़ा दें। मैं पिछले कई सालों से राय साहब का झोला व बन्दूक ढोता रहा हूँ। उनके पी० ए० की भी हैसियत से काम करता रहा हूँ। किसी अधिकारी के यहाँ जाकर टाइम लेना, लोगों द्वारा दिये गये प्रार्थना-पत्रों को रखना व उनका समापन करना आदि कार्य बखूबी करता रहा हूँ। मेरी जाति के सबसे ज्यादा ग्राम प्रधान भी

इस बार चुनाव जीते हैं। हाँ, थोड़ा पैसे की समस्या है, लेकिन राय साहब का सम्पर्क बहुत से व्यापारी लोगों से है—पेट्रोल पम्प वाले शुक्ला, सिनेमा हाल वाले अग्रवाल, सब जगह तो राय साहब की पैठ है।

□

वस्तुतः अनन्त के मन में राजनैतिक जीवन की महत्वकाक्षाएँ कभी न आतीं अगर वह राय साहब के सम्पर्क में न आया होता। अनन्त ने पाँच साल पहले शहर के डिग्री कालेज से बी० ए० पास किया था। रोज़ ट्रेन से आना-जाना होता था। इतना पैसा भी न था कि वह शहर में एक कमरा किराये पर लेकर रहता। बी० ए० पास करने के बाद एक वर्ष तक वह 'इम्प्लायमेंट एक्सचेंज' व तमाम कार्यालयों की धूल फाँकता रहा। कई प्रतियोगी परीक्षाओं में भी बैठा, लेकिन सफल न हुआ। इसी बीच किसी ने कहा कि यदि राय साहब चाह लें तो नौकरी लगवा सकते हैं। राय साहब जिले के एक विधायक के करीब थे, उनके चुनाव में काफी काम किया था। सौभाग्य से वही विधायक, राज्य सरकार में मंत्री हो गये थे। अब क्या था, नौकरी तलाशते बेरोजगार, मनोवांछित पोस्टिंग के लिए सरकारी कर्मचारी, अधिकारी, भाँति-भाँति के कोटा-परमिट के इच्छुक उद्यमी, व्यापारीगण सभी ने राय साहब की चेलाही शुरू कर दी

धीरे-धीरे अनन्त को समझ में आता गया और तब तक राय साहब के आका 'मंत्री जी' भी मंत्री पद से हट चुके थे। दूसरी ओर अनन्त भी ओवरएज हो गया था। अब अनन्त के पास राय साहब की चाकरी करने के अलावा कोई चारा न था। इस परस्पर निर्भरता व मजबूरी ने अनन्त में थोड़ी महत्वाकांक्षा राजनैतिक जीवन के प्रति जगाई। राय साहब का उदाहरण सामने था। लोग बताते हैं, राय साहब का नाम पहले हौसिला प्रसाद था। जैसे-जैसे उनकी हैसियत बढ़ती गयी, लोग हौसिला प्रसाद नाम

भूलते गये और ऊपर से नीचे तक, हौसिला प्रसाद, राय साहब हो गये।

राय साहब से मंत्र सीखते-सीखते अनन्त भी कुछ होशियार हो गया था। वह भी अपनी फीस गाहे-बेगाहे ले लेता था। घर की हालत अब पहले जैसी कमज़ोर न थी। यही सारा घटना क्रम अनन्त के मस्तिष्क में घूमता रहा और अनन्त थक कर सो गया।

दूसरे दिन सबेरे उठते ही अनन्त, राय साहब के घर गया। राय साहब ने रोज की तरह कुछ कागज-पत्तर उसे दिया। अनन्त ने कहा—'कल मैंने आपसे ब्लाक प्रमुख के चुनाव की चर्चा की थी, उस बारे में आपने कुछ फैसला किया। राय साहब तुरन्त ही अनन्त के चेहरे का भाव पढ़कर समझ गये। धीरे से पूछा—'अनन्त, अगर तुम्हें यह चुनाव लड़ा दिया जाय तो कैसा रहे ?' अनन्त ने पहले तो अपने चेहरे पर खुशी का इज़हार न करके प्रसन्नता को छिपाने का प्रयास किया, फिर उससे रहा न गया और वह बोला—'आप ठीक ही सोच रहे हैं। मेरी जाति के सबसे ज्यादा प्रधान इस बार जीत कर आयें हैं। आपका आर्शीवाद रहा तो मैं पुराने प्रमुख को हरा दूँगा।' राय साहब को एकाएक इतने स्पष्ट उत्तर की आशा न थी और इतना बड़ा फैसला तुरन्त करना राय साहब के स्वभाव में न था। उन्होंने फिर रुक कर कहा—'देखो अनन्त, इतनी जल्दी कुछ कहना ठीक नहीं होगा। पहले मैं पूरी स्थिति समझ लूँ, फिर देखूँगा।'

इधर राय साहब अपने धन्धे में लगे थे। पुराने प्रमुख को बुलवाया। अकेले कमरे में एक घण्टा बात किया। पुराने प्रमुख जी ने स्वीकार किया कि इस बार काफी नये चेहरे प्रधान बनकर आये हैं, अस्तु कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी। पैसे-रुपये व बन्दूक-पिस्तौल की भी जरूरत ज्यादा पड़ेगी। फिर भी देखा जायेगा। जब राय साहब ने अनन्त का रुख प्रमुख जी को बताया तो प्रमुख जी पहले तो चुप रहे फिर बोले—'मुझे भी अंदाजा है कि कोई नया लड़का ही इस बार मेरा मुकाबला कर सकेगा। पंडित श्याम सुन्दर तो मर गये। लेकिन आप मुझे यह बतायें कि कहीं आप ही तो उसे

मेरे खिलाफ लड़ने को तैयार नहीं कर रहे हैं ?' राय साहब ने कोई जवाब नहीं दिया। राय साहब अपनी उधेड़बुन में व्यस्त थे कि ब्लाक प्रमुख के चुनाव में कितना फायदा होगा ?

उधर अनन्त ने कार्यालय से नये ग्राम प्रधानों की सूची ली और उनसे एक-एक करके मिलने लगा। एक हफ्ते में उसे पता लगा कि प्रमुख जी के खिलाफ काफी असंतोष है और जातिगत समीकरणों में भी प्रमुख जी कमजोर पड़ रहे हैं। पिछली बार जो प्रधान जीते थे, उनमें प्रमुख जी की जाति के प्रधान कुल के आधे के लगभग थे। इस बार दलित प्रत्याशी ज्यादा जीत कर आये थे। संभावना यह थी कि अनन्त को उनका समर्थन मिल जाये। सवर्ण प्रधानों को यद्यपि पटाना कठिन था, लेकिन प्रमुख जी अपनी छल-विद्या का प्रयोग करके विजयी हो जाते थे। इस बार अनन्त को दलित होने का लाभ मिलने की पूरी-पूरी संभावना नज़र आ रही थी। पिछड़ी जातियों के प्रधानों की संख्या थोड़ी घटी जरूर थी, लेकिन उनमें बढ़ी हुई राजनैतिक चेतना ने स्थिति को अस्पष्ट कर दिया था। अनन्त ने सभी से बात की और उसे लगा कि वह चुनाव जीत सकता है। लोगों ने यह जरूर कहा कि राय साहब का साथ छोड़ दो, नहीं तो ज्यादा लोग तुम्हारा साथ नहीं देंगे। मन ही मन अनन्त ने अपनी चुनावी रणनीति तैयार कर ली।

□

चुनाव प्रचार की तेजी व उष्मा ने शहर के नेताओं को भी प्रभावित किया। सत्ताधारी पार्टी के एक मंत्री व कुछ विधायकों ने प्रमुख जी की मदद करने का आश्वासन दिया, लेकिन उन्हें या किसी को भी पार्टी का अधिकृत प्रत्याशी बनाने के सवाल पर वे एकमत न थे। अन्य राजनैतिक दल भी 'वेट एण्ड सी' की नीति पर चल रहे थे। हाँ, पैसे के सवाल पर

राजनैतिक दलों के नेतागण मजबूत प्रत्याशी की मदद को तैयार थे। शहर के एक प्रतिष्ठित राजनेता ने तो प्रमुख जी व अनन्त दोनों को वित्तीय मदद देने की बात की।

जब राय साहब और प्रमुख जी को यह पता लगा कि अनन्त अपने चुनाव-प्रचार में लग गया है तो दोनों ने अनन्त को बुलाया। राय साहब और प्रमुख जी की आज कल खूब छनने लगी थी। राय साहब अब प्रमुख ज़ी की जीप पर ही हमेशा सवार रहते थे। अनन्त को दोनों ने पैसे का लालच दिया। प्रमुख जी ने बीस हजार रुपये या मेन रोड पर प्लाट का लालच दिया। जब मामला पटा नहीं तब राय साहब बोले—'देखो अनन्त, तुम अभी बच्चे हो। चुनावी रणनीति की ए, बी, सी, डी भी तुम्हें मालूम नहीं है। हमारे सामने मत आओ। अगर प्रमुख जी की मदद करोगे तो जिला परिषद की सदस्यता में तुम्हें करा देंगे। निरर्थक झगड़े में न पड़ो।' परन्तु अनन्त चुप रहा और मन ही मन अपनी चुनावी राजनीति के घोड़े दौड़ता रहा।

कोआप्शन के सदस्यों के चुनावों में अनन्त का पलड़ा निश्चित तौर पर भारी दिखायी पड़ा। जिस तरह से अनन्त का असर बढ़ रहा था, उससे प्रमुख जी व राय साहब अत्यन्त चिन्तित थे। अन्ततः दोनों ने लम्बी-लम्बी दीर्घ व गूढ़ मंत्रणायें कीं। यह कई दिन और रात तक चलता रहा।

अब चुनाव का मामला गम्भीर व चुनौती भरी स्थिति में पहुँच चुका था। प्रमुख जी, अपनी जीप पर तीन-चार प्रधानों को अपने साथ लिए प्रधानों से सम्पर्क करने निकल पड़े। बड़ी सुबह से देर रात तक वे इसी सम्पर्क कार्य में लगे रहते थे। जो आसानी से किसी को पहचानते न थे आज जाति-बिरादरी का ताना बाना तोड़कर सभी के पैर आसानी से छू लेते थे। प्रधान लोगों की माताओं व अन्य परिवार जनों के प्रति उनका आदर व स्नेह तो अप्रतिम था। बड़े ही विनम्र स्वर से सभी से बात करते। ऐसा लगता था कि क्रोध या अभिमान तो इन्हें कभी छू न ही गया है।

परन्तु प्रमुख जी के मुख्य सहायक यानी राय साहब की कार्यशैली एकदम अलग थी। वे छः सात मोटर सायकिलों पर सलीम व शर्मा गिरोह के दस-बारह अपराधी तत्वों को लिए, हर उस ग्राम प्रधान को नमस्ते या प्रणाम करते, जिसके बारे में तनिक भी यह अंदेशा हो जाय कि वह प्रमुख जी का विरोध कर रहा है। जब अनन्त ने ग्राम प्रधानों की एक सभा सिनेमा हाल वाले चौराहे पर करनी चाही तो सलीम व शर्मा ने अपने गैंग के लोगों के साथ आकर सभा करने से रोक दिया। एक ग्राम प्रधान को जबरन मोटर सायकिल पर बैठा कर बीस मील दूर उत्तर में ले जाकर छोड़ दिया। साथ ही साथ राय साहब हर उस प्रधान से अकेले में आधे घण्टे जरूर बात करते, जिसकी वफादारी में शंका हो। ऐसे ग्राम प्रधानों को पैसे-रुपये का भी लालच राय साहब दे दिया करते थे।

अनन्त को सपने में भी उम्मीद नहीं थी कि राय साहब इस स्तर पर चले जायेंगे। पिछले चार सालों से उसने राय साहब की बहुत सेवा की थी। राय साहब की ईमानदारी पर उसे पहले हल्की सी शंका अवश्य थी, परन्तु इस पैमाने पर भ्रष्टाचार व विश्वासघात करने की उसे आशा न थी। उसे राय साहब में उस जंगली जानवर के गुण-दुर्गुण दिखाई पड़ने लगे जो बिल्ली व सियार की तरह चालाक व मक्कार एवं चीते और बाघ की तरह आदमखोर के अवयवों को एक में समेटे हुए हो।

चुनाव की तिथि से एक सप्ताह पहले से काफी चुनावी सरगर्मी आ गयी। अनन्त ने जब ग्राम प्रधानों की एक मीटिंग कस्बे के चौराहे पर करना चाहा तो सलीम व उसके आदमियों ने धमकाकर मीटिंग न करने दिया। जो भी प्रधान अनन्त की मदद में आगे आता, उसे लालच व भय दिखाकर तोड़ लिया जाता। चुनाव के पाँच दिन पहले तो अनन्त के मुख्य समर्थक प्रधानों का पता ही न चला। पन्द्रह प्रधानों को घरों से जबरदस्ती उठवाकर सलीम राय साहब के घर ले गया था। वहाँ भोजन, शराब व कबाब का अच्छा इन्तजाम था। बाकी सब आनन्द था, लेकिन घर जाने की मनाही

थी। राय साहब ने उन पन्द्रह प्रधानों के मनोरंजन के लिए वीडियो पर रोज दो-तीन फिल्में दिखलाने की व्यवस्था भी कर दी थी।

अनन्त बहुत दौड़ा। जो प्रधान उसके खास समर्थक थे, मिलते ही न थे। हारकर वह राय साहब के पास गया। राय साहब के घर अपने पन्द्रहों समर्थक को देखकर उसका मन टूट गया।

फिर समझौता वार्ता चली। अनन्त को अपनी हैसियत का ज्ञान स्पष्टतः हो चुका था। अनन्त से अपना नामांकन दाखिल न करने की बात पक्की हो गयी। पूर्व प्रमुख द्वारा मेन रोड पर एक प्लाट देने की बात भी पक्की हो गई। उसी प्लाट पर एक दुकान खोलकर अनन्त ने अपनी जीविका चलाने का विचार बनाया।

अंततः उधर प्रमुख जी पुनः 'निर्विरोध' प्रमुख हो गये।

□□

टी० बी० वार्ड

अस्पताल सुनसान लग रहा था। जहाँ अक्सर यहाँ भीड़ रहती थी, "कृपया शान्त रहें" के बोर्ड के बावजूद यहाँ शोर मचता रहता था। मरीज ही मरीज, मरीजों के रिश्तेदार-परिवारजन, डाक्टरों-नर्सों-वार्ड ब्वाय आदि से हमेशा भरा रहता था, यह अस्पताल। सरकारी अस्पताल होने के कारण वर्दीधारी लोग भी खूब नजर आते थे।....... आज यह बिल्कुल खाली-खाली था। ज्यादातर वार्ड सूने थे। कुछ-एक वार्डों में मरीज रह गये थे, जो मजबूरीवश कहीं जा नहीं सकते थे। या जिनके घर वाले या परिवारजन ही अपने मरीज को नहीं ले जाना चाहते थे। यह अस्पताल, उन अस्पतालों में शामिल था, जहाँ के डाक्टर हड़ताल पर चले गये थे।

इन मोटे-मोटे डाक्टरों को क्या दुख है ? इन्हें क्या परेशानी है ? ज्यादातर डाक्टर अपनी कारों में अस्पताल आते हैं। कई डाक्टरों की बीबियाँ भी डाक्टर हैं। तुम्हारी दुकान की ओर तो ये कभी देखते भी नहीं। इनका नाश्ता करने का स्तर तो सिविल लाइन के नीचे का नहीं। हड़ताल तो गरीब मजदूर करते हैं। समझ में नहीं आता ये लोग क्या चाहते हैं ?...... रमेश लगातार भाषण दिये जा रहा था। राम प्रसाद चुपचाप सुने जा रहा था। रमेश रोज सबेरे ड्यूटी पर आने के बाद, पहला काम राम प्रसाद की दुकान पर चाय पीने का करता था। इसके पहले औपचारिकतावश हाजिरी-रजिस्टर में दस्तखत भीं करना ही पड़ता था। चाय के साथ-साथ दैनिक समाचारों पर भी एक नजर डालता था। अखबार

खरीदने की हैसियत तो रमेश की थी नहीं। अस्पताल में चतुर्थ श्रेणी की नौकरी और ऊपर से यह मंहगाई ! डेढ़ रुपये की चाय पीना ही कठिन था।

रमेश का भाषण आगे जारी हुआ—"अरे भैया ! जो जितना पैसे वाला है, वह और भी पैसे वाला बनना चाहता है। ये डाक्टर लोग मोटी-मोटी तनख्वाह तो लेते हैं; घर पर "प्राइवेट प्रैक्टिस" भी करते हैं, सरकार से प्राइवेट प्रैक्टिस न करने का भत्ता (नॉन-प्रैक्टिसिंग एलाउंस) भी लेते हैं। सरकारी अस्पताल में आपरेशन करने की तारीख के पहले मरीज अगर इनके घर पर "दान-दक्षिणा" व "विशेष फीस" न दे आये तो आपरेशन की डेट टाल देते हैं।

कई डाक्टर तो छाँट-छाँट कर नर्सों से इश्क लड़ाते रहते हैं। ज्यादातर बड़े बाप के बेटे हैं। मजदूरों व गरीबों की नकल करके हड़ताल का रास्ता अख्तियार किये हैं। हम लोग हड़ताल करते हैं तो जेल में बन्द कर दिये जाते हैं। "मुर्दाबाद" करने पर लाठियाँ खाते हैं। ये लोग अस्पताल के लॉन में हड़ताल के दौरान भुने काजू व कॉफी का स्वाद ले रहे हैं।— सरकार को चाहिए कि इन सालों को बन्द कर दें, नौकरी से निकाल दें।—

हमारा तो खून चूस कर ये मोटे हो गये हैं और अब हड़ताल करना भी हमसे सीख रहे हैं।"

राम प्रसाद सारी बात सुनकर हँसने लगा और बोला "रमेश ! अब सुर्ती वगैरह बनाओ।यह तो मालूम ही है कि तुम डाक्टरों के एकदम खिलाफ हो।— अरे ये लोग बड़ी मेहनत से पढ़-लिखकर डाक्टर बने हैं। अपने अधिकारों व अपने प्रति अन्याय के लिए लड़ रहे हैं। अन्याय के लिए लड़ना कोई बुरी बात नहीं। आखिर इन्हें भी इसी दुनिया में रहना है। आज "धन्वन्तरि" का युग नहीं है। इनको भी बाल-बच्चे पालना है। हाँ।

हड़ताल करना देखने में अच्छा नहीं लग रहा है। सुना है, जापान में मजदूर भी जब हड़ताल करते हैं तो काम बन्द नहीं करते; केवल काली पट्टी बाँध लेते हैं। वहाँ पर ट्रेड यूनियन के बड़े से बड़े नेता भी कारखानों/कार्यालयों में पूरा दिन काम करते हैं। ट्रेड यूनियन की नेतागीरी के लिए कामचोरी नहीं करते। यहाँ तुम्हारे अस्पताल में तो जो नेता हो जाता है, सबसे पहले वह अपनी सीट का काम करना बन्द कर देता है और प्रशासन का स्थायी आलोचक बन जाता है। केवल हाजिरी भर लगाता है। सभी डाक्टर खराब नहीं हैं। डॉ० कुमार मरीजों का कितना ख्याल रखते हैं। गरीब-अमीर, अफसर-मजदूर सभी को एक नजर से देखते है।...... इसलिए सभी डाक्टरों को एक निगाह से देखना ठीक नहीं है।

रमेश को राम प्रसाद की बात अच्छी नहीं लगी, फिर भी सुर्ती का व्यवहार करके वह अपना ड्यूटी पर जाने का उपक्रम करने लगा।

□

डाक्टरों की हड़ताल का आज तीसरा दिन था। सरकार ने प्रशासनिक विभाग से कुछ अधिकारियों तथा अनेकों वरिष्ठ अधीनस्थों, इन्सपेक्टरों की ड्यूटी अस्पताल के दैनन्दिन कार्यों को चलाने के लिए लगाई थी। प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति अस्पताल में ऐसे ही थी जैसे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर को वनस्पति विज्ञान का "हेड" बना दिया जाय। खैर ये बेचारे अधिकारी व इन्सपेक्टर सरकार के हुक्म की तामील करने रोज अस्पताल आते थे। टेलीफोन के जरिए अन्य अस्पतालों, नर्सिंग होम आदि से संपर्क करके इमरजेन्सी वाले केसेज को भेजने का इन्तजाम इन्हें ही करना रहता था।

अस्पताल के ग्रुप "सी" व "डी" अर्थात तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी चूँकि हड़ताल पर नहीं थे, इसलिए पुराने मरीजों को पर्ची के

आधार पर हाउस सर्जनों की मदद से दवा वितरण का काम भी चल जाता था। वार्ड में जिन नर्सों आदि की ड्यूटी थी, वे लगभग सभी झंझटों से मुक्त थीं और पूरे मनोयोग से वार्तालाप सुख या बाजारू उपन्यासों व हल्की पत्रिकाओं का ज्ञान प्राप्त करने में तल्लीन थीं।

जो प्रशासनिक अधिकारी डयूटी पर थे, वे सुबह-शाम उन मरीजों को देखने आते थे, जो अभी तक यहाँ से किसी अस्पताल नहीं गये थे।

हड़ताल के चौथे दिन अस्पताल के नवनियुक्त अतिरिक्त प्रशासनिक अधिकारी ने मरीजों का रजिस्टर देखा तो दो मरीज आज भी भर्ती थे। वह चौंक गया और क्रोधित होकर इन्सपेक्टरों व नर्सों से पूछा कि ये मरीज आज तक यहाँ क्यों रखे गये है, यहाँ कोई डाक्टर नहीं है। "हाउस जाब" के लोग तो केवल दिन में ही रहते हैं। रात में कोई डॉक्टर रहता नहीं है। अगर किसी मरीज की तबियत ज्यादा खराब हो गई तो कौन दवा करेगा ? नर्सों ने बताया कि ये दोनों मरीज टी॰ बी॰ वार्ड के हैं। इनमें से एक अधेड़ व्यक्ति है और दूसरी महिला है। ये स्वयं ही जाना नहीं चाहते।

नवनियुक्त प्रशासनिक अधिकारी ने उन मरीजों से सीधी बात करनी चाही। वह इन्सपेक्टरों व कुछ नर्सों के साथ टी॰ बी॰ वार्ड गया। अधेड़ व्यक्ति की समस्या हल्की थी। वह काफी हद तक ए॰ टी॰ टी॰ (टी॰ बी॰ रोधी दवायें) से स्वस्थ हो चुका था। यहाँ अस्पताल में पर्याप्त दूध, अण्डा व फल मिल जाता था। घर पर यह संभव न था। वह समझाने-बुझाने पर घर जाने को तैयार हो गया।

दूसरे मरीज की हालत खराब थी। वह कठिनाई से बोल नहीं पाती थी। शरीर के नाम पर हड्डियाँ मात्र थीं। गरीबी व बीमारी के दुश्चक्र से पीड़ित उस औरत के पास उसकी एक बहन बैठी थी, जो स्पष्टतः कुछ भी कहती नहीं थी। प्रशासनिक अधिकारी ने जब मरीज के पति से बात करनी चाही तो पता लगा कि वह ड्यूटी पर गया है। शाम को आयेगा।

प्रशासनिक अधिकारी ने शाम को उस औरत के पति को बुलवाया और समझाने का प्रयास किया कि इस अस्पताल में डॉक्टर नहीं हैं, इन्हें दूसरे अस्पताल में दाखिल करा दिया जाय। उस औरत के पति ने अपने आर्थिक-अभावों का जिक्र किया। अधिकारी ने कहा कि वे सरकारी तौर पर स्वीकृति लेकर मदद करायेंगे; फिर भी उस औरत के पति ने अपनी सहमति नहीं दी। खीझ कर प्रशासनिक अधिकारी ने पूरे क्रोध से चिल्लाकर कहा कि क्या तुम अपनी औरत को जान से मारना चाहते हो ? बात को समझना क्यों नहीं चाहते। इस पर उसका पति चुपचाप कमरा छोड़कर बाहर निकल गया।

प्रशासनिक अधिकारी ने एम्बुलेंस से उस औरत को दूसरे अस्पताल में जबरदस्ती भेजकर भर्ती करा दिया।

थोड़ी देर बाद एक इन्सपेक्टर प्रशासनिक अधिकारी के पास आया और बोला—"साहब ! वह तो चाय की दुकान पर बड़बड़ा रहा था कि यह अफसर न जाने क्यों इस साली को यमदूतों से बचाना चाहता है। यहाँ तो वह आसानी से मर जाती। वहाँ डाक्टर लोग दवा करेंगे। जल्दी मरने नहीं देंगे। मेरी माँ के पास एक शादी की बात आयी है। यह मर जाये तो इससे जान छूटे शादी भी हो जायेगी और अच्छा खासा दहेज भी मिल जायगा।"

प्रशासनिक अधिकारी सन्न होकर यह बात सुनता रहा और टी० बी० वार्ड की ओर देखने लगा। उसे समाज का बहुत बड़ा हिस्सा टी० बी० वार्ड में भर्ती नज़र आने लगा।

पिन्टो

घर के अन्दर एकदम निस्तब्धता थी। सब कुछ शान्त था, जैसे भयावह आँधी-तूफान आने के पहले हो जाता है। जैसे जगत स्थावर हो जाता है। पूरे घर में सभी लोग अपने-अपने काम में लगे थे, कोई किसी से कोई बात नहीं कर रहा था। घर का एक मात्र बच्चा लकी भी सबको गुपचुप देखकर शान्त सा हो गया था। पापा जी ने जिस आवाज और जिस भाषा का प्रयोग आज किया था, पूरे जीवन-काल में शायद ही उनका व्यवहार कभी ऐसा रहा हो।

दरअसल घर के अन्दर सुगबुगाहट तभी शुरू हो गयी थी, जब पापा जी पिन्टो को घर ले आये थे। पिन्टो, एक चाय की दुकान पर काम करता था। दिन भर बर्तन धोना, मेज पोंछना, ग्राहकों की सेवा करना, मालिक व उग्र ग्राहकों की डाँट-फटकार व कभी-कभी मार उसकी दिनचर्या थी। मम्मी के मरने के बाद, पापा जी को सबेरे 6 बजे वाला चाय मिलनी बन्द हो गयी थी। तीनों बहुएँ 7 बजे से पहले सबेरे उठती नहीं थीं। पापा जी भी किसी को डिस्टर्ब नहीं करना चाहते थे। सबेरे की चाय वे पिन्टो के हाथ चाय की दूकान पर पीते थे। पापा जी और अन्य ग्राहकों में फर्क यह था कि वे ही एक मात्र ऐसे ग्राहक थे, जो पिन्टो का हाल-चाल पूछते थे। ऐसा शायद इसलिये भी था कि घर में अब पापा जी का हाल पूछने वाला कोई न था। पापा जी पहले घर में घुसते समय, बहू लोगों को सूचना देने के लिए खाँसते थे। फिर खाँसी ने उन्हें ऐसा जकड़ा कि पूरे जाड़े और फिर मौसम

बदलने पर खाँसी उनका साथ न छोड़ती थी। वृद्धावस्था में बात करने का दिल बहुत करता है, परन्तु घर के अन्दर किसी को भी पापा जी से बात करने की फुर्सत नहीं थी। अब उनकी बात रिक्शेवालों व पार्क में खेलने वाले छोटे बच्चों से ही हो पाती थी।

शाम के वक्त जब पापा जी, लकी को बात करने के लिए बुलाते तो छोटी बहू चीखकर उसे होमवर्क करने को बुला लेती थी। संक्षेप में यह समझिए कि घर के अन्दर वे अवांछनीय व अस्पृश्य से हो गये थे। हाँ ! खाना बनते ही चार रोटी, सब्जी, चावल, दाल का "परोसा" उन्हें सबसे पहले बड़ी बहू पहुँचा देती थी। न कोई बीच में कुछ पूछता था न दरियाफ़्त करता था। पापा जी भी निरपेक्ष भाव से भोजन आदि कर लेते थे।

जैसे-जैसे बहुएँ घर में आती गयीं, पापा जी धीरे-धीरे घर के भीतरी हिस्सों से कटने लगे। मझली बहू के आने पर ड्राईंग रूम में उनका वास हो गया था। फिर दो साल बाद जब छोटी बहू आयी तब तो ड्राईंग रूम भी छूट गया और वे बरामदे के स्थायी निवासी हो गये। बरामदे में कष्ट का आधिक्य जाड़े में ठंडी हवा और गर्मी में लू से था। बरसात में फुहारें भी यदा-कदा आ जाती थीं। तीनों बेटों व उनकी पत्नियों ने कभी भी पापाजी के कष्ट के बारे में कुछ नहीं कहा। अपनी पेंशन के जो पाँच सौ रुपये प्रति माह मिलते थे, उसमें से कुछ रुपये प्रति माह बचाकर टाट खरीदे और बरामदे में लगवा लिए। बरामदे में उनका स्थायी वास होने से बेटों और बहुओं ने पीछे के दरवाजे से ही अपना आना-जाना शुरू कर दिया। इससे पापा जी को पता नहीं चल पाता था कि कौन कब कहाँ गया ? कब आया ?

धीरे-धीरे पापा जी एक पूर्णतः वास्तविक निरपेक्ष और तटस्थ भाव से जीवन जीने लगे।

कभी-कभी कोई गाँव से आया नया रिक्शा वाला जब आत्मीयता से

पापा जी से बात कर लेता तो उन्हें बहुत अच्छा लगता। अपनी दैनिक आमदनी, अपनी बचत, झंझटों को निस्संकोच पापा जी को बता देता तो उनकी आँखे भावपूर्ण हो जाने से छलछला जातीं थीं। अब तो जैसे-जैसे लोगों की आमदनी बढ़ती जा रही है, जीवनस्तर बढ़ता जा रहा है। दूसरों से तो क्या, अपनों से भी कोई दिल की बात नहीं करता है। अपना पेट काटकर तीनों बेटों को कान्वेन्ट स्कूल में उन्होंने इसलिए तो नहीं पढ़ाया था कि वे बड़े राष्ट्रों की तरह, पापा जी को गरीब देश समझकर व्यवहार करें। न तो बेटे अपने काम-धन्धे, न ही अपनी आमदनी की कोई भी जानकारी, पापा जी को देते थे। अब तो धीरे-धीरे लकी के स्वास्थ्य वगैरह की जानकारी भी दूसरों के माध्यम से मिलने लगी थी।

जैसे-जैसे बेटों व बहुओं ने उनकी उपेक्षा शुरू की, उन्होंने परिवार पर अपना खर्च धीरे-धीरे कम कर दिया। पहले पेंशन का एक बड़ा भाग वे घर में खर्च कर देते थे। अब वे बाहर चाय वगैरह ले लेते थे। धार्मिक व सामाजिक विषयों पर पुस्तकें खरीदते थे। अपना साबुन-तेल वगैरह भी वे अब स्वयं खरीदने लगे थे। उन्हें कभी-कभी वे दिन याद आते थे, जब वे पढ़ने के लिए शहर आये थे। कई-कई ट्यूशन उन्होंने किये थे। सबेरे 6 बजे सायकिल पर निकल पड़ते और रात दस बजे घर लौटते थे। इतना परिश्रम इसलिए करते थे कि गाँव में अपने बूढ़े माता-पिता के लिए कुछ रुपये भेज सकें। एक ये इस ज़माने के बच्चे हैं। कभी भूलकर भी हाल नहीं पूछते।

कई वर्षों की भीषण मानसिक यंत्रणा सहने के बाद जब वे पिन्टो को घर ले आये तो उन्हें बहुत अच्छा लगा था। उधर पिन्टो भी अपने पुराने मालिक के अत्याचारों से पीड़ित था, उसे भी राहत मिली। पिन्टो को चाय की दुकान वाला 75 रु० प्रति माह देता था। पापा जी उसे 100 रु० प्रति माह के वेतन पर ले आये थे।

घर में पिन्टो के आगमन पर सभी ने बहुत प्रसन्नता दिखाई। तीनों

बहुओं को मुफ्त का सेवक मिल गया। पिन्टो को वेतन देना तो पापा जी के जिम्मे था, लेकिन पिन्टो से काम लेने की जिम्मेदारी सभी की हो गयी। घर में कपड़े धुलने के लिए जो धोबी कपड़े लेने आता था, उसे हटा दिया गया। केवल प्रेस के लिए कपड़े धोबी को दिये जाने लगे। कपड़े धोने के लिए टब में इकट्ठा कर दिये जाते। पूरी दोपहर पिन्टो कपड़े धोता। दिन में अन्य समय सबके बताये कार्य करता रहता। कभी जूते में पालिश, कभी बर्तन धोना आदि-आदि कार्य। घर में जो महरिन लगी थी, उसे छुड़ाने के लिए भी आन्दोलन चलाया गया। लेकिन चूँकि महरिन, बड़ी बहू के मायके में भी काम करती थी और उसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दायित्व संदेश-वाहन का था, अस्तु महरिन को नहीं छुड़ाया जा सका।

मतलब यह कि पूरा घर एक मुफ्त के नौकर का सुख लेने लगा। घर में कोई भी चीज टूट-फूट जाती, चाहे बच्चे का खिलौना ही क्यों न हो, सब में एक मात्र अपराधी था पिन्टो। फिर पिन्टो को पड़ती डाँट और पापा जी को उलाहना। जैसे कि पापा जी पिन्टो की सारी गलतियों के लिए जिम्मेदार हों। पापा जी केवल उसे घर ले आये थे।

रात को पापा जी जब बिस्तर पर लेटते तो पिन्टो रोज उनके पैर दबाता था। इससे उन्हें बड़ा सुकून मिलता था। घर में कोई अच्छी चीज खाने को बनती थी और पापा जी को मिलती थी तो वे उसका थोड़ा हिस्सा पिन्टो के लिए सुरक्षित रख देते थे। पिन्टो ही एक मात्र घर में ऐसा प्राणी था जो अपनी सारी बातें निःसंकोच उन्हें बता देता था। वह पापा जी के हर काम का ख्याल भी रखता था। लोटे में पानी रखकर उसे गिलास से ढक देता था। पापा जी का बिस्तर ठीक कर देना, उनकी किताब वगैरह ठीक से रखना नियम से करता था

खाना खाते समय बीच-बीच में रोटी वगैरह के लिए पूछ लेता था। पिन्टो जब पूछता तो उन्हें बहुत अच्छा लगता था। कुछ इसलिए भी कि पत्नी के मरने के बाद से खाने के समय पास बैठने और पूछने का

सिलसिला टूट गया था। भला उच्च पदस्थ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बेटों व माडर्न बहुओं के पास इतना फालतू समय कहाँ था कि वे बेकार हो चले निरीह बूढ़े बाप के नखरे उठायें। वे तो पार्टियों, मीटिंगों, क्लबों, शापिंग वगैरह से ही फुरसत नहीं पाते थे।

पिन्टो का आना पापा जी के लिए बहुत सुखद था। तीव्र गर्मी में शीतल मन्द बयार जैसी अनुभूति, वैसा अनुभव देता था, यह पापा जी को पहली बार लगा।

उधर पिन्टो भी घर भर के आदेशों का पालन व यंत्रणायें इसलिए सह लेता था क्योंकि उसे पापा जी के प्यार की मरहम मिलती थी। पिन्टो की तबीयत खराब होने पर वे मुहल्ले के डाक्टर के पास ले जाते थे और दवा दिला देते थे। पिन्टो ने अपना पैसा भी पापा जी के पास, सुरक्षा की दृष्टि से रख दिया था। पिन्टो की दृष्टि में पूरी लंका में बस एक विभीषण थे पापा जी।

दिनों-दिन, पापा जी को मिलने वाले उलाहने और शिकायतें बढ़ती गयीं। कभी काम न करने की शिकायत, कभी जवाब-सवाल करने की बात, कभी सामान का नुकसान, कभी पिन्टो का पतंग उड़ाना, सारी शिकायतें पापा जी के लिए सुरक्षित रखी रहतीं। धीरे-धीरे पापा जी उद्विग्न रहने लगे।

आज सबेरे-सबेरे छोटी बहू की चीख सुनकर पापा जी बुरी तरह चिढ़ गये। आज होली का त्यौहार था और महरिन ने कल ही कहा था कि वह सबेरे नहीं आयेगी। अस्तु बरतन माँजने का काम भी पिन्टो कर रहा था। बरतन धुलते समय केतली टूट गयी। बस क्या था, छोटी बहू जो शायद केतली टूटने की आवाज सुनकर ही जागी थी, चीखकर बोली, "पापा जी ने तुम्हें सर पर चढ़ा रखा है। शाम को जरा पैर दबा देते हो इसलिए तुम्हारे जैसे फालतू आदमी को रखे हुए हैं। बीस-पच्चीस रुपये की केतली तोड़ दी। जाओ और अपने पैसे से नयी केतली खरीद कर लाओ। यह सुनकर पिन्टो केवल इतना बोला, "छोटी मालकिन, मै केतली खरीद कर ला दूँगा।" इस पर

चिढ़कर छोटी बहू ने तीन-चार झापड़ पिन्टो को मारे। पिन्टो रोने लगा।

पिन्टो के रोने की आवाज ने पापा जी के सब्र का बाँध तोड़ दिया। अपनी खड़ाऊ पहने तेजी से खटपट करते आँगन में पहुँचे। वैसे वे सामान्यतः घर के अन्दर जाते नहीं थे। फिर लगभग गरज कर बोले, "एक गरीब बच्चे को मैं उस चाय की दुकान से यहाँ इसलिए लाया था कि वह इज्जत से, प्यार से यहाँ रह सके। लेकिन तुम लोगों में मानवता तो रही नहीं। रात-दिन पिन्टो काम करता है, तुम लोगों की जली-कटी सुनता है। मैं अब और बर्दाशत नही कर सकता।"

फिर थोड़ा रुक कर बोले, "आज मैंने फैसला किया है कि पिन्टो को यहाँ से हटा दूँगा। उसे कोई दूसरा काम दिला दूँगा।"

पापा जी, यह कहकर सोचने लगे कि एक दूसरे घर के लड़के ने उनका दिल जीत लिया है और उनके अपने बेटे, उन्हें बिल्कुल पराये लग रहे हैं।

पापा जी जब पिन्टो को लेकर चाय की दुकान पर गये तो दुकान के मालिक ने पिन्टो को अपने यहाँ रखने में असमर्थता दिखायी। दो-चार जगह काम दिलाने की कोशिश किया, लेकिन काम कहीं मिला नहीं। थक हारकर वे घर आ गये।

पिन्टो ने पापा जी को इतना दुःखी कभी नहीं देखा था। जब वह पापा जी का पैर दबाने लगा तो उसने देखा कि उनकी आँखों में आँसू भरे हैं। पापा जी साँप-छछूँदर की स्थिति में फँसे थे। क्या करें ? इस घर में तो पिन्टो को जो यातना मिली, इसके जिम्मेदार वे स्वयं थे। तीनों अपने बेटे, समय ने पराये कर दिये। यह अजनबी ही उन्हें अपना असली बेटा लग रहा है।

सुबह उठकर सबको पता लगा कि पिन्टो भाग गया है। उसने पापा जी से अपना पैसा भी नहीं लिया, शायद उसे पापा जी से यह कहने का साहस नहीं हुआ। लेकिन वह उनके दर्द को अच्छी तरह समझ सका था।

पापा जी छड़ी लेकर पिन्टो को ढूढने निकले पड़े।

□□

इन्वेस्टमेन्ट

श्रीमती माथुर, आज जब से डी० एम० साहब के घर से लौटी थीं, उनके मन में बस एक ही बात थी कि प्रान्त में जो सूखा पड़ा है उसके लिए वे क्या कर सकती हैं ? शताब्दी का यह भयावह सूखा दुःखद ज्वर बनकर आज पूरे रेगिस्तानी प्रान्त व इसके प्रभावित क्षेत्रों को सुखा रहा था। पिछले तीन वर्षों से यहाँ बरसात नहीं हुई थी, यहाँ तक कि मानसून के समय में भी लोग हल्की बरसात के लिए भी तरस गये थे। वैसे तो इस प्रान्त के इस हिस्से में बरसात का प्रतिशत व सेंटीमीटर हमेशा से बहुत निम्न स्तर का रहा है और यही इसे रेगिस्तान का हिस्सा बनाता है। खेती के नाम पर खरीफ में बाजरा व ज्वार व रबी के समय चना ही पैदा हो पाता था, वह भी पूर्णतः इन्द्रदेव की कृपा पर।

श्रीमती माथुर, इस शहर के एक बहुत बड़े उद्योगपति की पत्नी थीं। उनके नाम से कई कारोबार चल रहे थे। इस शहर के बाहर के औद्योगिक क्षेत्र में एक नई कम्पनी खुल रही थी, जिसकी वे अध्यक्ष भी थीं। वे एक प्रख्यात विश्वविद्यालय की स्नातक थीं। आरम्भ में वे पूर्णतः घरेलू महिला थीं, लेकिन जैसे-जैसे माथुर का व्यापार बढ़ता गया और बच्चे बड़े होते गये, श्रीमती माथुर ने अपना ध्यान बिजनेस में लगाना शुरू किया। श्रीमती माथुर के इस बदलाव को माथुर जी ने भी पसन्द किया। पत्नी से अधिक और कौन उनका विश्वसनीय हो सकता है ? धीरे-धीरे वे इन्कमटैक्स के कागजात, कम्पनी के दैनन्दिन कार्य-कलापों के कागजात और अब वे

इन्वेस्टमेन्ट की प्राथमिकतायें भी तय करने लगी थीं। इस बीच उन्होंने बिजनेस मेनेजमेन्ट, कम्पनी एक्ट, इनकमटैक्स लॉ और तत्सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन कर लिया। आफिस में एक चैम्बर श्रीमती माथुर के लिए ठीक कराया जा रहा था। मतलब यह कि वे अब माथुर साहब की घरेलू बीबी से बिजनेस पार्टनर बन रही थीं।

जब से वे घर की चहारदिवारी से बाहर निकलीं, उनका सम्पर्क दूसरे बड़े व्यापारियों, उद्योगपतियों व विभिन्न सरकारी अधिकारियों की पत्नियों से हुआ। उन्हें सरकारी अधिकारियों की सामान्यतः स्लिम, अत्याधुनिक व "वेलमेन्टेन्ड" बीबियाँ ज्यादा आकर्षक और अनुकरणीय लगीं। फैशन के नित नये उपादानों की जानकारी, कभी-कभी महानगरों के किसी बिल्कुल नये सौन्दर्य प्रसाधन के आविष्कार की सूचना, यह सब उन्हं उन्हीं से मिलती. थी। दूसरी तरफ उद्योगपतियों की सामान्यतः भारी भरकम और धार्मिक पत्नियाँ उन्हें बिल्कुल उबाऊ व कुन्द लगती थीं। अस्तु अब श्रीमती माथुर का सम्पर्क व मैत्री अधिकारियों की पत्नियों से ही बढ़ता गया। सही तौर पर उन्हें अफसरों की पत्नियाँ अप्सराओं-सी आकृष्ट करती थीं।

शहर के नये डी० एम० की पत्नी से श्रीमती माथुर का सम्पर्क एक पार्टी में हुआ था, फिर धीरे-धीरे व्यक्तिगत मुलाकातों व उपहारों से उसे वे काफी सुदृढ़ करती जा रही थीं।

आज मिसेज डी० एम० ने तो श्रीमती माथुर के ज्ञान-चक्षु ही खोल दिये। उन्होंने बताया कि यह समय कुछ "रचनात्मक" कार्य करने का है। शताब्दी के सबसे बड़े सूखे में हम महिलाओं की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। हाथ पर हाथ धरे रहने से काम नहीं चलेगा। कम से कम पचास हजार रुपये अपनी कम्पनी एवं अन्य कम्पनियों, उद्योगपतियों से इकठ्ठा करके, उससे सूखा पीड़ितों की सहायता की जाय। बेहतर तो यह होगा कि हम महिलायें स्वयं इस रुपये से सामान खरीद कर गाँवों में जाकर वितरण करें। इससे एक तरफ तो उनकी मदद हो जायगी, दूसरी तरफ हम

महिलाओं की महत्ता भी उजागर होगी।

श्रीमती माथुर अब अपनी मुहिम पर लग गई थीं। शहर के कुछ उद्योगपतियों से बीस हजार रुपये इकट्ठा हो गया था। बाकी के तीस हजार रुपये उन्होंने अपने पति से बात करके अपनी कम्पनी से देने की व्यवस्था की। यानि अब कुल पचास हजार रुपये इकट्ठा हो गया था। अब इनको सूखा-पीड़ितों के कल्याण हेतु व्यय करना था। श्रीमती माथुर ने अपने घर पर उद्योगपतियों की महिलाओं की एक मीटिंग बुलाई और मीटिंग में यह तय हुआ कि इसमें से बीस हजार रुपये सरकार को दे दिया जाय। बाकी के तीस हजार रुपये का सामान खरीद कर पास के किसी गाँव में बाँट दिया जाय। अब मीटिंग में छोटे-छोटे विवरणों पर विचार होना था। यह तय किया गया कि बीस हजार रुपये का चेक बनवाकर एक कार्यक्रम में मिसेज डी० एम० को भेंट किया जाय। यह भी तय हुआ कि बाकी के तीस हजार रुपये में से क्या-क्या सामान खरीदा जाय ? सहमति इस बात पर हो गयी कि तीस हजार रुपये से गेहूँ, दाल, गुड़, नमक, ग्रामीण महिलाओं के लिए सस्ती साड़ियाँ, माचिस, थोड़ी दवाइयाँ और ग्रामीण महिलाओं के लिए कुछ सस्ते श्रृंगार-प्रसाधन खरीदे जाँय। अब प्रश्न उठा कि इसका वितरण कौन से गाँव में किया जाय? सभी की राय थी कि गाँव पास का ही हो और मोटर गाड़ी वहाँ तक आसानी से जा सकती हो। दोनों अवसरों पर प्रेस के लोगों को आमंत्रित करने के विषय पर भी आम सहमति थी।

□

आज दोनों कार्यक्रम होने थे। श्रीमती माथुर पिछले कई दिनों से सामान खरीदवाने, उसे छोटे-छोटे पैकटों में व्यवस्थित कराने में सतत सन्नद्ध रहीं। आज के कार्यक्रम के लिए शहर के महत्वपूर्ण स्थानीय समाचार पत्र के प्रधान सम्पादक व मुख्य संवाददाता से भी वे बात कर चुकी थीं।

सबेरे दस बजे मिसेज डी० एम० को श्रीमती माथुर ने "सूखा-राहत कमेटी" की ओर से बीस हजार रुपये का चेक प्रस्तुत किया। इस आयोजन में स्वयं डी० एम० साहब, एस० एस० पी० साहब, इन्कमटैक्स, सेलटैक्स व अन्य सभी सरकारी विभागों के शीर्षस्थ अधिकारी, शहर के प्रसिद्ध उद्योगपतिगण, "गणमान्य" नागरिक भी मौजूद थे।

इसके तुरंत बाद "सूखा-राहत कमेटी" की ओर से एक गाँव में "राहत सामग्री" के वितरण हेतु जाना था। तीन-चार गाड़ियों की व्यवस्था की गयी थी। एक गाड़ी श्रीमती माथुर की थी, जिसमें महिलाओं के लिए "वर्किंग लंच" का स्टाक था। वेजीटेबुल व चीज सैंडविच, भुने हुए काजू, कोल्ड ड्रिंक की पचास बोतलें आदि-आदि सामान रखवाया गया था।

सम्बन्धित क्षेत्र का सरपंच स्वयं शहर आ गया था। जिस ट्रक में "राहत सामग्री" लदी थी, उस पर सरपंच बैठा दिया गया। लगभग आधे घंटे बाद वे लोग गाँव पहुँचे।

गाँव के एक स्कूल के भवन में आज राहत-सामग्री वितरण का कार्यक्रम था। इस कार्यक्रम के लिए ही आज स्कूल में छुट्टी घोषित कर दी गयी थी। दूर-दूर के गाँवों से महिलायें, पुरुष व बच्चे बड़ी मात्रा में स्कूल के बाहर एकत्र थे। जैसे ही कमेटी के सदस्यगण स्कूल के भवन पहुँचे, भीड़ हरकत में आ गयी। कुछ ग्रामीण तो दस-दस किलोमीटर दूर से आये थे।

सूखा राहत सामग्री के वितरण में लगभग दो घंटे लगे। फिर सभी को वहाँ से हटा दिया गया। प्रधानाध्यापक के कमरे में महिलाओं ने हल्का आहार लिया। सरपंच जी के घर से चाय बनकर एक बड़े बर्तन में आ गयी। चूँकि कोल्ड ड्रिंक तो आते ही कमेटी के लोगों ने पी लिया था, अस्तु अब चाय भी लोगों ने ले लिया।

सभी महिलायें काफी खुश थीं। एक नये तरह का काम करना उन्हें अच्छा लगा था। सभी कुछ ठीक-ठाक गुजर गया था। श्रीमती माथुर को

खल सिर्फ यह रहा था कि स्थानीय समाचार पत्र की ओर से कोई पत्रकार या संवाददाता नहीं आया था। थोड़े विचार विमर्श के बाद यह तय हुआ कि कमेटी के लोग शहर लौटने पर पहले स्थानीय समाचार पत्र के कार्यालय जाकर सम्पादक जी से मिलकर वहीं "न्यूज" बनाकर दे दें। साथ में इसे राज्य के दूसरे बड़े समाचार पत्रों को भी भेज दिया जाय। फोटोग्राफी का काम तो मिसेज सिंहल ने बखूबी कर लिया था।

दैनिक समाचार पत्र "मृत्युंजय" के कार्यालय में प्रधान सम्पादक का कक्ष भवन के बीचोबीच स्थित था, जिससे वे जब चाहें निकलकर कार्य की देख-रेख कर सकते थे। वहाँ श्रीमती माथुर व अन्य महिलाओं ने प्रधान सम्पादक जी के कमरे में अपने कल्याण कार्यक्रम की सविस्तार चर्चा की। बीच में कोल्ड ड्रिंक का दौर भी चला। समाचार पत्र में प्रकाशन के लिए समाचार वहीं बनाया गया। फोटो इत्यादि बाद में उन्हें देने को कहा गया। राज्य की राजधानी में सबसे ज्यादा बिकने वाले अखबार के लिए भी समाचार भेजा गया।

श्रीमती माथुर रोज सुबह आठ बजे के पहले नहीं उठती थीं। पिछली रात उन्होंने सबेरे छः बजे का अलार्म लगा दिया था। आज सबेरे उठकर वे "मृत्युंजय" पढ़ रही थीं।

□□

दो पाटन के बीच

सुअर ही सुअर, सुअरबाड़े से बाहर निकल पड़े। जोखू ने रोज सबेरे की तरह सुअरबाड़े का छोटा सा दरवाजा खोला। सुअर तेजी से बाहर को नित्य की भाँति भागे। सुअरबाड़े का दरवाजा बेहया के डंडों से बना था। जोखू को याद है, आज से कोई बीस साल पहले, पंडित जी अपने किसी रिश्तेदार के गाँव से सदाबहार बेहया का लतर ले आये थे। तब उस समय किसी ने भी सोचा नहीं था कि यह पूरे गाँव को घेर लेगी। पंडित जी ने वस्तुतः अपनी नई बाग के छोटे-छोटे पौधों की सुरक्षा के लिए उन्हें थाल्हों के चारों ओर लगवाया था। फिर तो इतनी तेजी से ये बढ़े कि गाँव की महिलाओं को नित्य-शौचकर्म के लिए आड़ बन गये और पसियान के सभी सुअरों का बारहमासी चरागाह।

सभी सुअरों व छौनों को हाँकते-हाँकते जोखू, पंडित जी की बाग के पास पहुँच गया। पंडित जी बाग के किनारे अपने ट्यूबवेल की चरही पर बैठे दातून कर रहे थे। हरित क्रांति का सारा लाभ तो पंडित जी ही जानते थे। हरित क्रांति के बाद पंडित जी की समृद्धि व वाचालता दोनों बहुत ही बढ़ गयी थी। परन्तु हरित क्रांति से प्राप्त लाभों से अब भी वे संतुष्ट न थे। उनकी महत्वाकांक्षा बहुत बढ़ गयी थी।

जोखू ने पंडित जी को पालागी किया तो पंडित जी ने "जीअ" का आर्शीवाद दिया। जैसे कि वे जोखू को केवल जिंदा देखना चाहते थे।

जोखू तनिक भी मोटा न हो यह उनकी इच्छा थी। जोखू जैसा क्षीणकाय व अर्द्धनग्न था, वैसा ही बना रहे, ऐसा आर्शीवाद पंडित जी रोज मन ही मन देते थे।

पंडित जी ने जोखू को पुकारा, "अरे जोखुआ, तै रुपिया लेई नहीं आये। का रुपिया अब न चाहे।" जोखू जरा पास आया और बोला, "पंडित जी, रुपया त चाहे, लेकिन शिवकुमार कहत रहा कि बंक से रुपिया कम बियाज पर मिलि जाये। तू त सौ रुपिया का एक महीना में दस रुपिया बियाज ले थ। बड़ा मुश्किल पड़थ बियाज देब।" पंडित जी चीख कर बोले—"जा जा...... शिवकुमरवा की नेतागीरी के चक्कर में आई गय न। ऊ तोहसे पैसा खाइ जाये। पसियाने के कई पासी भोग थें। तूहूँ भोगिल। हम त रूक्का पुरजा भी नाहीं कराइत। केवल विश्वास अउर बियौहार पर रुपिया देइथ। ओइसे तू जान तोहार तक्दीर जानै।"

इस वार्तालाप के बाद कई दिन तक जोखू अपने सुअर चराने के लिए पंडित जी की बाग की तरफ नहीं गया। दूसरे क्षेत्रों की ओर सुअर चराता रहा। रोज शाम शिवकुमार का दरबार करता रहा। शिवकुमार ने दो हजार रुपया बैंक से दिलवाने के लिए सौ रुपया बैंक वालों को घूस देने के लिए जोखू से ले लिया। कई सप्ताह तक जोखू शिवकुमार के पीछे दौड़ा तो शिवकुमार ने और सौ रुपये का इन्तजाम करने को कहा।

जोखू के लिए एक सौ रूपये का इन्तजाम करना बहुत कठिन था। पंडित जी के अलावा और कोई जरिया दिखाई नहीं पड़ रहा था। यह सोच कर शाम को पंडित जी की कोठी पर गया। पंडित जी ओसारे में बैठे थे, जोखू को देखते ही बोले, "का हो, शिवकुमार कुछ दियाएन की नाहीं ?" इस पर जोखू ने सोचा कि पंडित जी को बता दूँ कि यह पैसा शिवकुमार के मार्फत बैंक और हाकिम को देकर दो हजार बैंक से उधार लेगा परन्तु कुछ रुककर जोखू बोला, "हम वोटे के चक्कर में शिवकुमार के भैया के इहाँ ग रहे। रुपिया तो तोहइसे मिलथ। आज हमके सौ रुपिया दइ द।

बाकी रुपिया बाद में लेब।" पंडित जी बोले, "ल सौ रुपिया लइ जा। जब जरूरत होये बाकी आई क लइ जाया। हाँ हमार बियाज टाइम से दिये जाव।" फिर पंडित जी मन ही मन प्रसन्न हुए कि उनका चेला मटरू कटा नहीं। लेकिन उन्हें सबसे ज्यादा क्रोध शिवकुमार से था। शिवकुमार उनका भतीजा लगता था। चचेरे भाई का बेटा था, लेकिन नेतागीरी का चस्का उसे ऐसा लगा था कि वह सारे लोगों का नेता बनना चाहता था। उसने पंडित जी के कई चेलों को तोड़ लिया था।

सौ रुपिया लेकर वह एक दिन बाद शिवकुमार से मिलने गया। वह चाहता तो उसी दिन शिवकुमार से मिलने जा सकता था लेकिन कुछ रणनीति के तहत उसने एक दिन बाद मिलने को सोचा।

शिवकुमार भले ही पंडित जी के परिवार पट्टीदार का था, लेकिन अपने आचार-विचार व कर्म से और बाह्य दुनियावी आचरण में उनसे एकदम भिन्न था। वह सभी जातियों के घर भोजन कर लेता था। गरीबों के घर पर तो अक्सर वह बैठा रहता था। एक राजनीतिक पार्टी का वह सक्रिय कार्यकर्ता था तथा क्षेत्र के विधायक से उसकी निकटता थी। अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के तहत उसने सभी से निकटता बनाने की मुहिम चलायी थी। उनके साथ खा पीकर वह यह प्रदर्शित करता था कि वह उनका अपना है। उच्च जातियों के मध्य पंडित जी की प्रतिष्ठा ज्यादा थी और पंडित जी की काट तभी संभव थी, जब अन्य के मध्य शिवकुमार लोकप्रिय होता। वस्तुतः पंडित जी व शिवकुमार के स्वर्गवासी पिता में जो खींचतान शुरू हुई थी, ग्राम प्रधान के चुनाव में जो झगड़ा हुआ था, वही बढ़ते-बढ़ते आज इस स्तर पर पहुँच गया था कि दोनों परिवारों में बातचीत बन्द थी। शादी-विवाह-मरनी-करनी में भी खाना-पीना बन्द हो चला था। राजनैतिक महत्वाकांक्षा व शुद्ध-आर्थिक कारणों से अब दोनों परिवारों की दुश्मनी जगजाहिर हो चली थी।

शिवकुमार के पास जब जोखू पहुँचा तो शिवकुमार ने उसे मचिया पर

बैठने को कहा। जोखू के लिए यह परम सम्मान की बात थी। शिवकुमार के ही परिवार, पट्टीदारी के पंडित जी हैं, मचिया क्या कभी फटहा बोरा भी बैठने को नहीं दिया। पंडित जी दर्प और घमंड में चूर रहते हैं। काम के अलावा और कोई बात नहीं करते। एक यह शिवकुमार है, उसी परिवार का है, पढ़ा लिखा है, फिर भी इतनी इज्जत मुझे देता है। मेरी हैसियत ही क्या है ? सुअरों को खरीदना, छौनों को खरीदना, फिर उन्हें बड़ा करके बेचना। यह भी कोई काम है। दिन भर सुअरों के पीछे-पीछे गंदगी के आस-पास घूमना। यही तो मैं करता हूँ, उस पर भी शिवकुमार जी मुझे बैठने को मचिया देते हैं, चाय और सुर्ती भी देते हैं। अखबारों की खबरें बताते हैं। अब मुझे बैंक से उधार दिलाने में लगे हैं। आखिर हाकिम लोगों को खुश किये बिना कहीं कोई बड़ा काम बनता है, सौ रुपये ही तो पहले दिया था और अब केवल सौ रुपये और खर्च करने पर दो हजार बैंक से उधार मिल जायेगा। वह मोटा पंडित (जिसे सामने "पंडित जी" कहना पड़ता है, पैलगी भी करनी ही पड़ती है) तो दो हजार रुपये का ब्याज ही हर महीने दो सौ रुपया ले लेता, ऊपर से गाली-फक्कड़। मेरी औरत को कैसा आँख फाड़-फाड़ कर देखता है साला...... खैर...... एक बार यह दो हजार रुपया शिवकुमार दिला दे तो मेरा दलिद्दर दूर हो जाय। ब्याज भी नाम भर का होगा। आखिर सरकारी पैसा बैंक से मिलेगा। इस मोटे पंडित से जान छूट जायेगी। उसे याद आया कि कैसे उसका आखिरी खेत भी पंडित जी ने पिछले साल लिखवा लिया था। पहले जो चार हजार रुपया उसने पंडित जी से कर्ज लिया था, जोड़-जोड़ कर ब्याज और मूल मिलाकर बारह हजार रुपया का हिसाब पंडित जी ने समझाया था। थानेदार ने भी आकर जोखू को धमकाया था कि अगर पंडित जी का रुपया तीन दिन के अन्दर न दिया तो जेल की हवा खानी पड़ेगी। ब्राह्मण का रुपया तुम्हें पचेगा नहीं ? पंडित जी ने भी धमकाया था। उसी अपच से बचने के लिए अपनी

आखिरी जमीन भी पंडित जी को लिखनी पड़ी थी।

अब खेती न रहने पर सुअरों से ही गुजर का जरिया था अगर दो हजार रुपया मिल जाता तो कुछ "विलायती छौने" खरीद कर जल्दी ही धनी हो जाता। ये "विलायती सुअर" कितने मोटे और अच्छे लगते हैं। इनका दाम अच्छा मिलता है। जोखू यही सारी बात सोच रहा था कि शिवकुमार अखबार छोड़कर बोला, "का हो जोखू, का सोच थय ?" जोखू बोला, "भैया ! अब तोहरई सहारा बा। तोहार पटीदार त हमार आखिरी खेतवा लइ बढ़ेन। इहै दुई हजार बंक से दियाई द त हमार कुछ भला होइ जाय।" शिवकुमार सुर्ती दबाये बोला, "तूँ त उनही क विश्वास कर थे। गाई कसाई का विश्वास जादा करथ। खैर.... चल काल्हि तोह अफसर से मिलाई देब। तोहार रुपिया भी दई देब, अउर कागज पत्तर भी बनवाई देब।"

जोखू प्रसन्न मन से कल सबेरा जल्दी हो, ऐसा सोचते-सोचते घर की ओर चला।

बहुत सबेरे जोखू दिसा-मैदान होकर, बासी रोटी खाकर शिवकुमार के दरवाजे पहुँचा। शिवकुमार ने चारा काटने और गोबर उठाने का काम उसे बता दिया। जोखू ने मन मारकर बेगारी की। आखिर पंडित जी और इसमें कोई खास फर्क नहीं है। दोनों को बेगारी कराना अच्छा लगता है, ऐसा उसने सोचा। लेकिन पंडित जी से जान ऊब गयी। यह लड़का इज्जत तो देता है। शिवकुमार अपनी साईकिल निकाल कर चला और जोखू से बोला, "तू चौराहे वाली दुकनिया पर चाय पीया, हम हाकिम से बात करके आउब। तोहसे मिलब।"

जोखू लगभग दौड़ता-दौड़ता बाजार पहुँचा और चाय की दुकान के सामने खड़ा रहा। कुल सौ रुपया रहा, वो शिवकुमार पहले ही ले लिया था। अब चाय का टिटिम्मा कहाँ से उठाई। दो घंटे बाद देखा कि शिवकुमार साईकिल पर पान चबाते चले आ रहे थे। पास आकर बोले,

“सरकारी लोन के लिए हाकिम गारन्टी चाहता। तोहरे पास जमीन त बा नाही। हम तोहार गारन्टी लई लेब। उस समय जोखू को शिवकुमार के चेहरे में देवत्व दिखायी पड़ा। फिर एक क्षण बाद ही शिवकुमार बोला, “लेकिन तुहार गारन्टी लेई के पहले हमका तोहरे घर क रुक्का-पुरजा कराये परे। यह कागज पर अँगूठा लगाइ द तब हम आगे कागज बढ़ाउब।

जोखू हाथ में सादा कागज और स्टाम्प पेपर देख रहा था। जोखू को शिवकुमार के चेहरे में मोटे पंडित का चेहरा दिखाई पड़ने लगा।

□□

पथ-ज्ञान

मेरे किराये के कमरे के आकार से कोई दस गुने आकार का ड्राइंग रूम था। उसमें नर्सरी के बच्चे को पढ़ाने का मेरा यह पहला अनुभव था। इण्टर, हाईस्कूल के लड़कों को पढ़ाने का अभ्यास था मेरा। मेरे एक दोस्त ने कहा कि बेकार बड़ी क्लासेज के लड़के पढ़ाते हो। पैसा कम मिलता है। यहाँ पैसा अच्छा मिलेगा। आर्थिक विवशताओं में पड़कर मैंने यह ट्यूशन स्वीकारा था। घरेलू नौकर चाय व बिस्कुट दे जाता था। बच्चे के पिता से पहले दिन मुलाकात हुई थी। उन्होंने कहा था, "अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाना होगा।" मैनें हाँ कर लिया था। आखिर वे आला अफसर थे।

पढ़ाते-पढ़ाते एक सप्ताह हो गया था, आते ही नौकर ने कहा, "मेम साहब आ रही हैं।" जब "मेम साहब" को देखा तो मैं अचकचा कर खड़ा हो गया। रति मेरे सामने खड़ी थी।

अपने ही शहर में रति से मुलाकात हो जायगी यह मैंने कभी सोचा ही न था। यह शहर, जिसका एक-एक मुहल्ला, एक-एक मुहल्ले की बहुत सारी गलियाँ, मेरी साइकिल के टायरों के नीचे लगातार आती रही है। चौड़े-चौड़े राज मार्गों के किनारे-किनारे कभी भुना चना खाते, कभी अगले ट्यूशन पर जाने के अन्तराल को काटते। सोचता था कि इस शहर के सभी नेताओं, सुन्दर लड़कियों व अफसरों की कोठियों, उनकी गाड़ियों को मेरी आँखे बहुत कुछ पहचानती हैं। फिर रति इसी शहर में थी और मैं इसी मुहल्ले में

दो-दो ट्यूशन पढ़ाता था और आते-जाते कभी रति को देख न पाया। यह शहर है या कोई महासागर है जो लील गया मेरी.......... मेरी अपनी रति को.......... इसी महासागर पर स्वयं चालित छोटी सी नौका लेकर रोज भागता हूँ मैं और मुझे आभास ही नहीं कि मेरी रति को लीलने वाला यह महासागर कितना खूँखार और हृदयहीन है। इस हृदयहीन शहर में मेरी सारी महत्वाकांक्षाओं की एक-एक करके हत्या सायास की गयी।

□

कोई पन्द्रह साल पहले रति और मैं विश्वविद्यालय में थे। मैं एम० ए० (फाइनल) में और वह एम० ए० (प्रथम वर्ष) में। मैं किंचित संकोची था। मेरिट में रहने के कारण मेरी प्रसिद्धि पूरे विभाग में थी। भाषा-विज्ञान के पर्चे में मैंने विश्वविद्यालय का रिकार्ड तोड़ा था, अस्तु सभी अध्यापक गण व एम० ए० के विद्यार्थी मुझे जानते थे। कई लड़कों ने मुझसे नोट्स माँगना शुरू किया था। संकोची स्वभाव व ग्रामीण पृष्ठभूमि का होने के कारण लड़कियों से मैं दूर ही रहता था। पर न जाने रति में ऐसा क्या था कि जब मैं उसे देखता था, देखता ही रह जाता था। मेरे सहपाठी यदा-कदा मेरे इस सम्मोहन पर मेरा मजाक भी उड़ाते थे। एक दिन मैं जनरल लायब्रेरी में पुस्तकें छाँट रहा था कि एकाएक रति मेरे पास आकर खड़ी हो गयी। मेरी समझ में न आया कि मैं कैसे उससे बात करूँ ? चुप्पी तोड़ते हुए रति बोली, "मुझे भाषा-विज्ञान के नोट्स चाहिए।" अब मुझे यह भी याद नहीं था कि मेरे नोट्स किस लड़के के पास होंगे। मैंने कहा, "वो तो क्लास नोट्स थे। उनमें कोई ऐसी बात न थी। आपको मैं किताबें बता सकता हूँ, जो आप पढ़ लें।"

बड़ी मुश्किल पैदा हो गई, मुझ जैसे गँवई लड़के के लिए, उस एक दिन की बात से। वह हर दस-पन्द्रह दिन बाद मिलने पर "भाषा-विज्ञान" के

नोट्स माँगती थी। याद दिलाती थी। मैंने उसे टालने का बहुत प्रयास किया पर हर प्रयास असफल हुआ। आखिर वह इस पर आ गई कि तीन-चार टॉपिक्स पर मैं नोट्स बनाने के लिए उसे गाइड करूँ।

वह गाइड करना मेरे लिए बहुत मँहगा पड़ गया। गाँव के आस-पास के जो लड़के रोज मेरे साथ लोकल ट्रेन से शहर आते थे, उन लोगों ने यह बात चारों तरफ फैला दी कि मैं रति के चक्कर में पड़ गया हूँ। कुछ मित्रों की कृपा से बात बड़े भैया तक भी पहुँच गई थी।

मेरी हालत यह थी कि कुछ पूछिए मत। पूरे शिक्षा-काल में मेरे साथ यह अद्‌भुत घटना थी। मैं दिन में अपना क्लास छोड़कर उसके नोट्स बनाता तथा रात में देर तक उसके सपने देखता रहता। इस पूरे प्रकरण ने मेरी अपनी पढ़ाई को खराब किया और मेरे "प्रेम-सम्बन्ध" की खबर विभाग के अध्यक्ष महोदय तक भी पहुँच गयी।

परीक्षा के परिणाम से मुझे आश्चर्य न था। मैं द्वितीय श्रेणी में पास हो गया। रति ने एम० ए० (प्रथम वर्ष) में टॉप किया। वस्तुतः मैं दूसरे वर्ष की (फाइनल में) प्रथम वर्ष का ही कोर्स माँजता रहा। विभागाध्यक्ष महोदय ने वाइवा (मौखिक परीक्षा) के पेपर में केवल 40% अंक देकर रही-सही कमी भी पूरी कर दी थी। दर असल विभागाध्यक्ष महोदय को मैं पहले से ही पसन्द नहीं था। उनके कोप का भाजन बनने का एक कारण मेरा विजातीय होना भी था।

घर में मेरी पढ़ाई को लेकर बड़ी आशाएँ थीं। मेरा द्वितीय श्रेणी आने पर वह उत्साह कुछ ठंडा हुआ। बड़े भैया ने अब साफ-साफ कह दिया कि वे एक पैसा भी नहीं देंगे। माँ के पास था ही क्या ? पिता जी के मरने के बाद जो कुछ था, वह सब खर्च कर चुकी थीं। बड़े भैया की निगाह बदलने के बाद मेरे पास कुछ अर्थोपार्जन करने के अलावा अन्य कोई चारा न था।

इधर रति के मोहपाश में मैं इतना आबद्ध था कि मैंने शहर में रहने

का फैसला कर लिया। अनूप नगर मुहल्ले में एक कमरा किराये पर ले लिया। माँ राशन-पानी देने का वादा की थी। अपने खर्च के लिए मैंने ट्यूशन ढूढ़ लिये।

मैं सुबह शाम ट्यूशन में व्यस्त रहता। दिन में समय निकाल कर विश्वविद्यालय जाता। रति से मुलाकात होने पर, समय निकाल कर, विभाग की लायब्रेरी में बैठती, मेरे साथ। कभी-कभी समोसे, चाय आदि भी खिलाती-पिलाती। अक्सर मुझसे कहती कि या तो रिसर्च में प्रवेश ले लो या कम्पटीशन की तैयारी करो।

मैंने कोशिश की रिसर्च में एडमिशन की परन्तु विभागाध्यक्ष महोदय के इशारे में इतना असर था कि कोई भी गाइड बनने को तैयार नहीं हुआ।

कम्पटीशन का अनुभव मेरे लिए बड़ा कष्टदायक रहा। जब भी कोई विज्ञापन देखता, अपनी योग्यता होने पर फार्म भर देता था। हरेक फार्म के साथ पोस्टल आर्डर, बैंक ड्राफ्ट लगता। कम्पटीशन की किताबें, पत्रिकाएँ खरीदना भी ढेढ़ी खीर था।

गाँव में माँ-बाप ने जो जन्म तिथि लिखवाई थी, उसका परिणाम यह हुआ कि केवल एक मौका केन्द्रीय सिविल सेवा परीक्षा में मिला।

फिर सभी प्रतियोगी परीक्षाओं (राज्य स्तर, बैंक, ग्रामीण बैंक आदि-आदि) का वही परिणाम रहा, जो सिविल सेवा का था।

इस मध्य रति ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० कर लिया था और उसके धनाढ्य पिता ने उसका विवाह एक अधिकारी से कर दिया। रति ने मुझे कार्ड भेजा था। मैं जान-बूझ कर शादी में नहीं गया।

यह सारी घटनायें सिनेमा की रील की तरह आज घूम गयीं। मुझे पछतावा अपनी याददाश्त पर हो रहा था। आखिर रति की शादी का कार्ड कई महीनों तक अपने बिस्तर के नीचे रखा था। एक दिन गुस्से में उसे फाड़कर फेंक दिया था। रति के पतिदेव का नाम उसके गेट पर देखकर

मुझे याद क्यों नहीं आया ?

□

रति को पूरा कुछ याद आया हो या नहीं पर मेरे दिमाग में सारी घटनायें ऐसे घूम गयीं जैसे सब कुछ अभी-अभी बीता हो।

रति को मुझे देखकर कुछ भी आश्चर्य जैसा नहीं हुआ। शायद मुझे गेट से आते-जाते पीछे से देखकर पहले ही पहचान लिया हो। रति ने कहा, "अंकुर का काम कैसा है ?" मैं चुप ही रहा। रति ने मुझे बैठने को कहा। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहूँ ? उसने फिर पूछा, "आप कैसे हैं ?" मैं पहले चुप रहा और फिर बोला, "अंकुर ठीक चल रहा है।"

रति ने किंचित जोर देकर पूछा, "मैं आपका हाल पूछ रही हूँ। अंकुर के पापा कह रहे थे कि ओवरऐज होने पर भी प्राइवेट कम्पनी वगैरह में काम मिल जायेगा। अगर तुम कहो तो बात करूँ।"

मैं समझ गया था कि रति को सब कुछ पहले ही मालूम हो गया था, शायद मेरी हालत देखकर। मैं सोचने लगा था, शायद रति "भाषा-विज्ञान" का कर्ज चुकाना चाहती थी। पुराने ताल्लुकातों की वजह से शायद उसमें दया व सहानुभूति का अंश प्रबल हो रहा था।

मेरे लिये यह अकल्पनीय स्थिति थी। यह वही रति थी जो मेरे 15-20 मिनट पाने के लिए घन्टों मेरी प्रतीक्षा करती थी। मैं विभाग के सबसे प्रबुद्ध छात्रों में गिना जाता था और आज नर्सरी के बच्चों का ट्यूटर था।

सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में असफलता के बाद ओवरएज हो गया था। जिस रति को गाइड करने के चक्कर में मैंने अपना कैरियर तक खराब कर लिया था वही रति आज मुझे प्राइवेट कम्पनी में नौकरी करने की सीख दे रही थी, मैं क्या कहूँ ?

लगभग दो मिनट चुप रह कर मैंने कहा, "रति जी, देखिए ! मैं दया का पात्र नहीं हूँ। मेरा खर्च ट्यूशन से चल जाता है। इसी प्रकार के जीवन से मैं किसी तरह संतुष्ट होने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरी कोई महत्वाकाँक्षा अब नहीं रहीं।"

□

अनूप नगर, शहर की सबसे पॉश कालोनी थी। वहाँ शहर के आला अफसर, बड़े-बड़े उद्योगपतियों आदि की कोठियाँ थी। लगभग सभी बंगलों में कई बिस्वे का लान, अल्सेशियन कुत्ते, चार पहिया वाहन व संजी सँवरी बीबी एवं अति स्वस्थ बच्चे, मुझे एक जैसे दिखते थे। शायह यही इलाके देश की प्रति व्यक्ति औसत आय को सम्मानजनक स्तर दिलाते थे।

ऐसे इलाके यानी अनूप नगर की तरफ आज मेरी सायकिल का हैंडिल घुमाने पर भी नहीं घूम रहा था। संभवतः वह अब रास्तों की सही पहचान करने लगा था। इस शहर के महासागर में मैं और मेरी नौका; बिना किसी दया के भी तैर सकती है। ऐसा आभास मुझे होने लगा था।

□□

मुंशी जी का निश्चय

कमलेश के पापा यानी मुंशी जी अपने पुराने कमरे के दरवाजे को ओर देख रहे थे। कमरे के बाहर बढ़िया रंगीन पर्दा लगा हुआ था। मुंशी जी ने अपने जमाने में ऐसा पर्दा कभी घर में नहीं लगाया था। हाँ, बैठक वाले कमरे के तख्ते के लिए एक मजबूत और खूबसूरत चद्दर वे लाये थे, कमलेश के विवाहोच्छुक लोगों के स्वागतार्थ। शायद वे उस चद्दर के माध्यम से अपनी अच्छी आर्थिक स्थिति या रहन-सहन के अच्छे-स्तर का प्रदर्शन करना चाहते थे। शहर में जो लोग मुंशी जी को जानते थे, उनमें से बहुतेरे उनकी सादगी और मितव्ययिता से भी परिचित थे। एक या दो मील तक का सफर वे पैदल ही करते थे। वे एक स्थानीय कालेज में क्लर्क थे। नित्य लगभग एक मील की पैदल-यात्रा के बाद कालेज पहुँचते थे। इसके पहले पास के बाजार से ताजी सब्जी लेने रोज जाते थे। दूधवाला और अखबार वाला ही मुंशी जी को कष्ट नहीं देता था। दूध के सन्दर्भ में काफी शोध व अनुभव के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि दरवाजे पर जैसा भी दूध, दूधवाला दे जाय, वही ठीक है। फिर दूध का स्वाद चखे भी कई वर्ष हो गये थे। अब तो बस चाय ही मिल जाये, बहुत है। चाय में भी दूध नाग मात्र का रहता था। अब वे कभी किसी चीज के लिए कोई खास रुचि नहीं दिखाते थे, जो भी घर में बन जाता था, खा लेते थे। शायद जिन्दगी बहुत सपाट तरीके से जीने के वे पक्षधर हो गये थे। अपने पुराने कमरे से उनका लगाव था, जिसमें वे लगभग 20 साल रहे। कमरे के पर्दे के मोटेपन

व चमकीलेपन को वे निहार रहे थे। उनकी बहू उसी कमरे से निकल रही थी। उन्होंने आदतन घड़ी की ओर देखा। घड़ी में सुबह के आठ बज रहे थे। बहू का इस समय सोकर उठना उन्हें बिल्कुल नहीं पसन्द था। जब बहू नयी-नयी आयी थी तो परोक्ष रूप से उन्होंने बहू को और बेटे को उपदेश दिया था, लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ा। घर में जो शान्ति व्यवस्था स्थापित थी, उसे वे भंग नहीं करना चाहते थे। अपनी पत्नी की मौत के बाद मुंशी जी गुम-सुम ऱहने लगे थे। पत्नी को मरे भी आज दस साल हो गये और कमलेश की शादी हुए पाँच साल। पत्नी के जीवित रहने पर मुंशी जी अपना सारा क्रोध अर्द्धांगिनी पर ही उतारते थे। गुस्सा चाहे कार्यालय से संबंधित हो या बच्चों से ताल्लुक रखता हो, मुंशी जी बस अपनी पत्नी को डाँटते रहते थे। पत्नी भी सब सुन लेती थी। पत्नी के निधन के समय तक मुंशी जी दो लडकियों की शादी कर चुके थे। कमलेश और छोटी लड़की ही उस समय बचे थे। इन दोनों को माँ और बाप दोनों का प्यार उन्होंने ही दिया। दोनों विवाहित पुत्रियों का भी ख्याल मुंशी जी को ही रखना पड़ता था। कमलेश व बहू दोनों अपने में ही मस्त रहते थे। घर के किसी और प्राणी के प्रति वे बहुत ही असंपृक्त भाव रखते थे।

पत्नी की मौत ने मुंशी जी को पूरी तरह तोड़ दिया था। कहाँ वे पत्नी से एक-एक छोटी से छोटी बात को तय करने के लिए बहस करते थे, कौन-सी सब्जी बनेगी ? सब्जी में तेल कितना पड़ेगा ? छोटी से छोटी बात में वे विचार विमर्श करते रहते थे। पत्नी सुधा वस्तुतः जीवन में एक ऐसी उत्प्रेरक शक्ति थी, जिससे वे नयी से नयी समस्या से जूझ सकते थे। उनका वाचाल स्वभाव था। घर में हमेशा माहौल अच्छा रखते थे। लेकिन सुधा के न रहने पर वे काफी चुप-चुप रहने लगे थे। छोटी लड़की और कमलेश को उन्होंने खाना बनाना सिखाया। सबेरे-सबेरे उठकर पत्थर के कोयले की अंगीठी जलाकर आँगन में रख देते थे। जब तक में अंगीठी में आँच आती, मुंशी जी नहा-धोकर तैयार हो जाते। फिर दोनों बच्चों को

उठाकर पढ़ने बैठा देते। सुधा और कमलेश को पाक विज्ञान की शिक्षा छुट्टियों के दिन देकर उन्हें वे जीवन के आवश्यक पक्ष की जानकारी देते थे।

मतलब यह कि मुंशी जी नौकरी और परिवार में पूरी तरह रमे हुए थे। पत्नी के न रहने पर उन्होंने परिवार से लगाव कम करना शुरू कर दिया। हाँ ! अपने दायित्वों का पालन करने में उनसे चूक नहीं होती थी। इस समय परिवार से लगाव कम होने का कारण शायद उनके बेटे का आचरण व स्वभाव था। बाद में बहू जो आयी, उसने रही सही कमी भी पूरी कर दी।

□

मुंशी जी का जो परिचय अभी मिला, वह तो उनकी जिन्दगी का दिखने वाला हिस्सा है। काफी हद तक उनकी रुचियों, प्रवृत्तियों व स्वभाव में परिवर्तन अनेकों घटकों की वजह से हुआ था, लेकिन आज की घटना व सूचना ने उन्हें एकदम से झकझोर सा दिया। आज कार्यालय से जब वे निकलने को हुए तो प्रिंसिपल साहब ने उन्हें बुलाया और सीलबन्द लिफाफा उन्हें दिया। पत्र को खोलकर उन्होंने पढ़ा तो दंग रह गये। पत्र में लिखा था कि, ——— "1980 में कालेज के फंड की जो जाँच हुई थी, उसमें आपको गबन का दोषी पाया गया है। एक सप्ताह के अन्दर आप अपना पक्ष स्पष्ट करें कि आपके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों न की जाय ?" कालेज के फंड की देख-रेख तो स्वयं प्रिंसिपल साहब, जो मैनेजर के रिश्तेदार थे, इसलिए लगभग सर्वशक्तिमान थे, करते थे। कभी-कभार, रजिस्टर में हिसाब-किताब मुंशी जी से दर्ज करवाया जाता था। मुंशी जी जीवन भर नाक की सीध में चलते रहे। चार्जशीट वगैरह उन्हें कभी मिली नहीं। फंड के पैसे पर उनका कभी भी नियंत्रण न था, फिर भी कारण

बताओ नोटिस मिला। क्या करें ? क्या न करें ? यही सब सोचते विचारते मुंशी जी घर चले आये थे। उन्होंने सोचा पहले कमलेश से राय सलाह लूँगा, वह तो सरकारी कार्यालय में बाबू है, उसकी जानकारी नियम-कानूनों की ज्यादा है।

"पापा ! इस कागज में कुछ भी नहीं है, लेकिन यह तो बताइए कि आपने कालेज के फंड को कभी डील किया है ?" मुंशी जी धीरे से बोले, "मैंने तो कभी भी रुपया पैसा अपने पास नहीं रखा, सब कुछ प्रिंसिपल साहब ही रखते हैं। हाँ, रजिस्टर पर यदा-कदा जोड़ घटाना मुझसे कराते हैं।" इतने पर कमलेश बोला, "आपको ड्यूटी-लिस्ट मिली है, अगर हो तो दिखाइये।" "मुझे ड्यूटी-लिस्ट आज तक नहीं मिली है, न मैं इसके बारे में जानता हूँ। मुझे जो भी कार्य प्रशासन देता है, मैं कर देता हूँ।" मुंशी जी कराहते से बोले। इस बार कमलेश जोर से बोला, "अगले महीने आपको रिटायर होना है, ऐसे ही बिना समझे-बूझे दस्तखत किये जाइए। कालेज-प्रशासन आपको पेंशन और पैसा नहीं देगा। अपना भविष्य देखिए। मैं तो किसी तरह अपना खर्च चला पाता हूँ। बिना पेंशन के आपके टिटिम्में कौन पूरा कर पायेगा। आप जिन्दगी भर धोखा खाते रहे, सब पर विश्वास करते रहे। अब प्रिंसिपल व मैनेजर मिलकर आपको बलि का बकरा बनः देगें और खुद बच जायेंगे।"

मुंशी जी को ऐसे जवाब की उम्मीद नहीं थी। कालेज के प्रिंसिपल के तीखे पत्र ने उन्हें उतना आहत नहीं किया था, जितना भविष्य के बारे में कमलेश की चेतावनी ने। कौन सा टिटिम्मा है मुंशी जी का ? खाना-पीना-कपड़े सब कुछ एकदम सादा, फिर भी यह कटाक्ष। अपने वेतन का तीन-चौथाई, बहू के हाथ रख देने पर भी यह व्यवहार ? वे चुपचाप बिना खाना खाये सो गये। बहू ने एक बार धीरे से खाने को कहा था। मुंशी जी की ओर से कोई उत्तर न पाने, पर वह पैर पटकती अपने कमरे में चली गयी।

मुंशी जी के जवाब से प्रिंसिपल व कालेज की प्रबन्ध-समिति संतुष्ट न हुई और उन्हें तेरह हजार रुपये के गबन के आरोप हेतु चार्जशीट दे दी गई। चार्जशीट के साथ संलग्न-पत्र में यह भी लिखा था कि "आपको अगले महीने रिटायर होना है, अस्तु चार्जशीट का फैसला होने तक पेंशन व भविष्यनिधि का भुगतान नहीं किया जायगा। इस बारे में सम्बन्धित अधिकारी को भी लिखा गया है।" चार्जशीट पढ़कर मुंशी जी की आँखों के सामने अंधेरा छाने लगा। वे दिनभर की छुट्टी लेकर घर आ गये। दिन भर चारपाई पर लेटे रहे।

शाम को कमलेश ने लौटकर चार्जशीट व संलग्न पत्र देखा और अपनी पत्नी को भी दिखाया। फिर खाने पर चलने को कहा। मुंशी जी ने कहा कि तुम तो रोज बहू के साथ खाते हो, खा लेना, मुझे आज इच्छा नहीं है। बड़े आश्चर्य की बात थी कि बेटे ने एक बार भी फिर खाने को नहीं कहा। मुंशी जी मुँह ढाँपकर सो गये।

आज सबेरे मुंशी जी सब्जी लाने नहीं गये। चुपचाप बाहर जाकर दुकान पर चाय पी और अखबार बाँचते रहे। बहू ने जब देर होती देखी तो सब्जी लाने का थैला लाकर रख दिया और बोली, "पापा, सब्जी ला दीजिए, देर हो रही है।" मुंशी जी ने धीरे से कहा, "मेरी मानसिक स्थिति आज ठीक नहीं है, मैं छुट्टी पर हूँ, कहीं नहीं जाऊँगा।" जब बहू कमलेश को जगाने गयी तो कमलेश जोर से चीखा, "ऊल जलूल काम करेंगे तो दिमाग तो खराब रहेगा ही, न जायें कहीं, यही अखबार चौन्हराते रहें। कुछ ही दिन की बात है। फिर केवल अखबार ही चोन्हराना रहेगा।" बेटे की बुलन्द आवाज पर मुंशी जी ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। अखबार पढ़ने का सिलसिला जारी रखा। परिवार ऐसे तो नहीं चलता है। मैं दिनों-दिन बूढ़ा और कमजोर हो रहा हूँ। ये लोग मुझे नौकर समझते हैं। खुद आठ बजे तक टाँग पसारे रहते हैं। मेरी क्या गर्ज है कि पूरे घर का भार अपने सर पर लिये फिरूँ।

□

मुंशी जी याद करने लगे, कमलेश जब छोटा था, कोई चार-पाँच साल का रहा होगा। उसकी कोई छोटी सी फरमाइश पूरी करने के लिए भीगते हुए वे चौक तक चले गये थे। हाँ ! याद आया कमलेश ने मोर का पंखा माँगा था। कमलेश की छोटी-छोटी जिद पूरी करने के लिए वे बहुत परेशान होकर भी थकते न थे। दूध पिलाने के लिए कितने-कितने यत्न करने पड़ते थे। वही कमलेश आज मेरी सेवा करने को कौन कहे, मुझसे उल्टा सेवा लेता है। मुझे नौकर समझता है। उसके एक समय जरा कम खाने पर डाक्टरों के यहाँ भागता था कि इसे भूख नहीं लगती। कोई टानिक लाता था। आज भी इसका ख्याल रखता हूँ, लेकिन यह और बहू मेरी कीमत नौकर इतना भी नहीं करते। यही सोचते-सोचते उन्होंने मन पक्का किया और जोर से आवाज देकर कमलेश को पुकारा। इतने जोर से वे बहुत कम चिल्लाते थे। कमलेश चारपाई पर लेटे-लेटे चीखा, "पापा ! क्या आसमान फट रहा है। नहीं सब्जी लाना है तो मत लाइए। मुझे तंग मत करिए।" मुंशी जी जरा थम कर बोले, "बेटा ! अब आज मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि मैं तुम्हारा बाप हूँ, तुम्हारा नौकर नहीं। सब्जी वगैरह आज ही नहीं, अब कभी नहीं लाऊँगा। तुम्हें लाना हो तो लाओ, नहीं तो बहू को भेजो, मुझसे मतलब नहीं है। मेरी कीमत तुम लोग इससे और कम कर रहे हो क्योंकि मुझे पेंशन व भविष्यनिधि का पैसा नहीं मिलने वाला है। तुम्हें मालूम है, मैं दो सौ रुपया बैंक में रिकरिंग में जमा करता रहा हूँ। मेरा खर्च ही क्या है ? नहीं चलेगा तो ट्यूशन या कोई और काम कर लूँगा। मैंने अब निश्चय कर लिया है कि तुम्हें स्वावलम्बी बनाकर रहूँगा। बाप का यह फर्ज मुझे अभी पूरा करना है।" यह कहकर मुंशी जी घर से बाहर टहलने की सी मुद्रा में चले गये।

मुंशी जी चौराहे पर पान की दुकान पर खड़े थे। एक जोड़ा पान मुँह में दबाये अपना गुस्सा कूच रहे थे। देखा कमलेश नाइटगाउन पहने सब्जी लेने जा रहा था। हाथ में झोला झुलाते तेज कदमों से सब्जी मण्डी की ओर कमलेश को जाते देख मुंशी जी को अच्छा लग रहा था। वह धीरे-धीरे मुस्कराने लगे।

□□

मृगतृष्णा

विश्वविद्यालय आज रोज की तरह खुला था। वही भीड़-भाड़......... पैदल, सायकिल, रिक्शा, स्कूटर, कार सभी कुछ छोटी-छोटी नदियों के समान विश्वविद्यालय के महासागर में छुपते जा रहे थे। आज कोई नयी बात नहीं थी, लेकिन चन्दन का दिल आज विश्वविद्यालय के गेट से अन्दर घुसने का नहीं कर रहा था। खैर.............. बैल बूढ़ा भले ही हो जाय, क्या जोतना भूल सकता है ? वह धीरे-धीरे छात्रसंघ भवन के किनारे वाले मार्ग पर चलने लगा। एकाएक कार के तेज हार्न ने उसे चौंका दिया। पीछे देखा तो जगदीश था। कोशिश करने पर भी वह जगदीश को "हैलो" न कर सका। आखिर जगदीश ने ही मौन तोड़ा–"चन्दन इतने सीरियस क्यों हो?" जवाब दिया अनन्त ने प्रत्याशित रूप से ही, "तुम तो ऐसे पूछ रहे हो जैसे कुछ जानते ही नहीं।"

जगदीश शहर के सबसे पुराने विधायक मार्कण्डेय बाबू का एकमात्र पुत्र था। मार्कण्डेय बाबू पहले एक अखबार निकालते थे। धीरे-धीरे व्यवसाय-पत्रकारिता व राजनीति की त्रिवेणी की कृपा से शहर के प्रमुख व्यक्तियों में एक हो गये। जगदीश इण्टरमीडिएट से ही चन्दन का सहपाठी था। विश्वविद्यालय में दोनों ने एक साथ बी० ए० (पार्ट वन) में प्रवेश लिया था। चन्दन ने विश्वविद्यालय की योग्यता-सूची में सबसे ऊँचा स्थान पाकर बी० ए० पास किया। जगदीश अपने पिताश्री की कृपा व विश्वविद्यालय के क्लास नोट्स से थर्ड डिवीजन में बी० ए० पास कर

गया। इधर चन्दन ने एम० ए० में प्रवेश लिया तो जगदीश ने एल० एल० बी० में। कभी-कभी आते-जाते दोनों में सलाम-दुआ हो जाती। दूसरे लड़के अनन्त को जगदीश का खास दोस्त समझते थे लेकिन सच्चाई कुछ और ही थी। टेरीकाट के कपड़ों ने जो "सोकाल्ड समाजवाद" ला दिया है, वाहनों की गड़गड़ाहट उस "सोकाल्ड समाजवाद" को जड़ से हिला देती है। कपड़ों से तो अब किसी की हैसियत का पता ही नहीं चल पाता। हाँ ! वाहनों से अवश्य गरीब और धनी का फर्क साफ जाहिर हो जाता है। जब बीस-बीस कि० मी० का चक्कर अपने पिता की विरासत बुढ़िया सायकिल से लगाकर चन्दन विश्वविद्यालय पहुँचता तो देखता कि जगदीश की चमचमाती कार छात्रसंघ भवन के बाहर खड़ी है। उसे वस्तुस्थिति का ज्ञान हो जाता था और चन्दन को अपने व जगदीश के मध्य अन्तराल और भी बढ़ता दिखायी देता था।

आज से छः वर्ष पहले चन्दन ने प्रथम श्रेणी में मास्टर्स डिग्री हासिल की थी। प्रोफेसर नाथ की कृपा न हो पाने के कारण वह टाप न कर सका। प्रोफेसर नाथ की कृपा के दो आवश्यक आधार थे, पहला—छात्र समजातीय होना चाहिये, दूसरा—सेवा-भाव प्रधान छात्र हो। अनन्त में एक योग्यता जातिगत तो जन्मजात ही नहीं थी। दूसरी योग्यता का भी उसमें उस समय अभाव था।

एम० ए० का रिजल्ट निकलते ही प्रोफेसर दास ने चन्दन को बुलाया। चन्दन ने सुना था प्रो० दास शोध कार्य में बहुत अच्छा निर्देशन करते हैं। प्रो० दास ने शुरू में तो बड़ी उत्साहजनक बातें की। परन्तु आर० डी० सी० से शोध का विषय अप्रूव होने के बाद से ही प्रो० दास की उदासीनता रंग दिखाने लगी। इस उदासीनता को समाप्त करने के प्रयास में अनन्त ने क्या-क्या नहीं किया। रेलवे में आरक्षण, पोस्ट आफिस में रजिस्ट्री करने से लेकर विभिन्न विश्वविद्यालयों से आयी हुई उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन, कभी-कभी आटा पिसाना, सब्जी लाने तक कार्य किया, लेकिन प्रो० दास ने

कभी भी चन्दन के शोध कार्य में रुचि नहीं ली। आरम्भ के दो वर्ष तक तो सिनाप्सिस ही फाइनल नहीं हो पायी। बाद में अनन्त जब भी अपने शोध की बात शुरू करता प्रो० दास कह देते— देखो इधर दो-तीन महीनों तक तो बड़ी व्यस्तता है–कई शोध प्रबन्ध बाहर से आ गये हैं। बहुत से सेमिनारों में जाना है, विश्वविद्यालय में बहुत सा काम है। बाद में रिसर्च की बात करना। यही प्रक्रिया कई बार दुहरायी गयी। इसी बीच प्रो० नाथ के रिटायर होने के बाद प्रो० दास विभागाध्यक्ष की कुर्सी सुशोभित करने लगे। अब कई अन्य रिसर्च स्कालर प्रो० दास की सेवा के लिए कटथ्रोट कम्पटीशन करने लगे। इस कट-थ्रोट कम्पटीशन में दो रिसर्च स्कालरों की स्कूटरों ने चन्दन की पुरानी सायकिल को बहत पीछे छोड़ दिया। अब प्रो० दास को कहीं भी जाना होता था तो स्कूटरधारी रिसर्च स्कालर की सेवा ली जाती। रेलवे स्टेशन, पोस्ट आफिस व बैंक आदि के काम में भी स्कूटरों ने शीघ्रता के द्वारा चन्दन का स्कोप खत्म सा कर दिया। अंजाम सामने ठीक ही आया। एक स्कूटरधारी को प्रो० दास ने विश्वविद्यालय में अंशकालिक प्रवक्ता बनवा दिया तो दूसरे को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एक डिग्री कालेज में रखवा दिया। दोनों ही जगह प्रो० दास चयन समिति में थे। विश्वविद्यालय में तो उनकी रिकेमेन्डेशन ही पर्याप्त थी और डिग्री कालेज में वे स्वयं इक्सपर्ट थे।

पिछले छह वर्षों में प्रवक्ता पद के लिए दो बार सेलेक्शन कमेंटी हो चुकी है। दोनों बार अनन्त का नाम उछला था, लेकिन दोनों बार उसकी नियुक्ति होते-होते रह गयी।

पिछले महीने सेलेक्शन कमेटी की तिथि निश्चित होने पर चन्दन, प्रो० दास के पास अपनी थीसिस के अपने रफ लिखे चार चैप्टर लेकर पहुँचा तो प्रो० दास ने कहा कि इधर तो बड़ी व्यस्तता है। प्रो० दास से जैसे ही उसने कहा कि थोड़े ही दिनों बाद सेलेक्शन कमेटी है, यदि आपका आदेश हो तो इन चैप्टरों को टाइप करा लूँ। इस पर आग बबूला होकर प्रो० दास

बोले– तुम्हारी सेलेक्शन कमेटी के लिए मैं देश-विदेश में अर्जित अपनी ख्याति नष्ट कर लूँ। बिना पढ़े मैं एक भी पन्ना टाइप करने को नहीं कहूँगा। सच तो यह था कि जब भी चन्दन अपनी थीसिस का कोई अंश प्रो० दास को देखने को देता तो महीनों वह प्रो० दास की मेज पर यूँ ही पड़ा रहता। आखिर हारकर वह उन चैप्टरों को अपने साथ ही लेता जाता।

बेचारे चन्दन को क्या मालूम था कि प्रो० दास अपनी छोटी साली को अपने विभाग में नियुक्ति करवाने के लिए पिछले एक साल से ताना बाना बुन रहे हैं। सेलेक्शन कमेटी के तीन दिन पहले चन्दन को यह पता चल पाया कि प्रो० नाथ की साली माधुरी की नियुक्ति का पूरा इन्तजाम हो चुका है तो वह जगदीश के घर की ओर भागा। घर पर जगदीश मिला नहीं। पता चला जगदीश कहीं शहर में ही है। अन्ततः शाम काफी हाउस के सामने अपने दल-बल के साथ जगदीश मिला। कुछ बात होने पर जगदीश बोला कि माधुरी ने दिल्ली से एम० फिल० किया है, और वह उसी राजनीतिक दल की युवा शाखा से सक्रिय रूप से सम्बद्ध रही है, जिसका सदस्य जगदीश था। अतः वह माधुरी की नियुक्ति का विरोध नहीं कर सकता था। चन्दन को बड़ी आशा थी कि जगदीश अपने पिता मार्कण्डेय बाबू के प्रभाव का इस्तेमाल करके कुछ मदद करेगा। लेकिन कोरा जवाब मिलने पर अनन्त चुप रह गया।

सेलेक्शन कमेटी हुई। हुआ वही जो पहले से तय था। प्रो० दास ने इक्सपर्टों की नियुक्ति के लिए मार्कण्डेय बाबू के माध्यम से राजनीतिक प्रभाव का इस्तेमाल किया था। अपने दो मित्रों को इक्सपर्ट बनवाकर प्रो० दास ने सेलेक्शन कमेटी में जैसा खेल चाहा, वैसा कराया। आखिर मार्कण्डेय बाबू प्रो० दास की बिरादरी के हैं। चुनाव के समय हर तरह का सहयोग प्रो० दास करते हैं तो गाढ़े समय में मार्कण्डेय बाबू कैसे पीछे हटें। मार्कण्डेय बाबू की राजनीतिक ताकत और प्रो० नाथ की प्रोफेसर लोगों के मध्य पहुँच की सम्मिलित शक्ति के आगे कौन टिक सकता था?

उन दोनों का यह गठबन्धन किसी की किसी भी योग्यता को काटने के लिए पर्याप्त था।

चन्दन को ध्यान आया कि जगदीश उसका कंधा दबा कर कह रहा था कि पापा ने कहलाया है तुम इधर-उधर दौड़कर अपनी इनर्जी खराब मत करो। विश्वविद्यालय प्रशासन ने एक अतिरिक्त पद के सृजन के लिए राज्य सरकार को लिखा है। पापा कोशिश करेगें तो यह पोस्ट मिल जायेगी और तुम्हारी नियुक्ति हो जायेगी। तुम प्रो० नाथ का विरोध मत करो यह तुम्हारे भविष्य के लिए हानिकारक होगा।............ और हाँ पापा ने तुम्हें बुलवाया है आज ही शाम को मिल लो।

□□

ऊसर

यह याद रखना मुश्किल नहीं है कि जब माँ मुझे छुटकी-छुटकी की रट लगाए सीने से लगाये रहती थी या पापा मुझे सबसे ज्यादा चाहते थे या दीदी व भइया से कभी कोई खुश नहीं रहता था— मुझसे ही सभी प्यार-दुलार करते— या फिर मेरी शादी ढूँढ़ने के लिए पापा के भागीरथ प्रयत्न। जिस-जिस रिश्तेदारों के सलाम का जवाब तक पापा नहीं देते थे उन तक के घर पर घुटने टेक आये थे। आखिर मिले जिनकी तलाश थी— सागर। आखिर शादी के लिए दो जरूरी शर्तें थीं सजातीय हो और कमाऊ भी। पुलिस इंस्पेक्टर की नौकरी, रूआब वरदी का, आवाज कड़क और जेब में पैसा। और क्या चाहिए था ? धन्य हैं वे पापा और मम्मी। थोड़ा मुझे ही अटपटा सा लग रहा था, जाने क्यों? वरदी पहने सागर जब मोटर साइकिल पर धड़धड़ाते दरवाजे तक आ जाते, मुझे ड्राइंगरूम में भी आने में संकोच लगता। सागर के आते ही मम्मी दौड़कर गेट तक आ जातीं— या फिर शादी के साल दर साल बाद रिश्तेदारों और मित्रों के इन्वेस्टीगैटिव सवाल, फिर डाक्टरों और अस्पतालों के चक्कर— फिर सागर की मायूसी, क्रमशः उदासीनता, सम्बन्धों की गरमाहट की जगह ठंडापन, कभी-कभी बासीपन और अक्सर उबाऊपन। लम्बे समय तक संवादहीनता व थोड़ी सी चुप्पी के बाद बिजली की कड़क जैसी बातें, वे भी अकारण। जैसे दुनिया की और घर की सारी समस्याओं की जड़ मैं ही हूँ। अगर किसी बड़े अफसर से सागर की अनबन हो गयी या किसी राजनैतिक व्यक्ति से

अथवा पत्रकारों से खींचतान तो सारी की सारी गाज मुझ पर ही गिरनी होती थी। जिन्दगी की उलझनों के झंझावात में, समस्याओं के चक्रव्यूह में, सास के अनवरत ताने और ससुर द्वारा किये गये अनवरत अपमान के प्रयास और सागर की दूसरी शादी की चर्चा तो कभी मेरी निन्दा। जिन लोगों को घर की ड्योढ़ी पर भी शायद सम्मान नहीं दिया जाता मेरे निन्दा रस में मेरी सास इतना डूब जाती कि उन्हें बैठाकर चाय-पानी वगैरह भी कराती। सास का यह कहना कि जिस छाती से दूध न बहे वह कलेजा पत्थर का है, निष्ठुरता की पराकाष्ठा है और बिना माँ बने हुए कोई भी औरत अपने को पवित्र नहीं कर सकती। जैसे कि इस अपवित्रता को या तो मैं चाहती हूँ या मैंने इसकी कोई योजना बना रखी है। कलेजा कचोट उठता जब सागर की दूसरी शादी की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चर्चा आती कि आखिर परिवार तो चलाना ही है पुरानी पुश्तैनी जायदाद और सागर की अकूत कमाई का वारिस न हुआ। यह सोच-सोच कर कि घर में बन गया था एक गुट जिसमें ससुर और सास के अलावा कुछ निकट और कुछ दूर के रिश्तेदार कुछ सागर के दोस्त, जो पहले मुझे वासना भरी निगाहों से देखते थे और आज भी उनकी आंखों की कोर में कहीं लोलुपता, कहीं वासना और अन्ततः ईर्ष्या मिश्रित घृणा। यह सारे लोग सागर को भड़काते रहते कि उस पेड़ को पानी डालने से क्या फायदा जिससे कुछ भी हासिल न हो। हाँ तुम्हारी औरत तो टीचर है न इसलिए तुमको भी पढ़ा लेती है। अगर सास के किसी ताने के उत्तर में कोई उचित बात भी कही जाए तो बस यह कहकर आड़े हाथ लिया जाता कि आखिर स्कूल में मास्टर है न इसलिए भाषण देने में तो विशारद है ही। आने-जाने वालों में ज्यादातर लोग अपनी बिरादरी के ही थे आखिर बिरादरी का कोई मतलब होता है। शादी-ब्याह, रिश्ते-नाते, सम्बन्ध सभी कुछ अपनी जांति में ही तो बनाए जाते हैं चाहे दहेज के लिए अपनी जाति का आदमी कुत्ते से भी बदतर सलूक क्यों न करता हो। एक दूसरे के चरित्र पर लांछन लगाने का काम भी

सबसे पहले अपनी जाति ही करती है। लड़की-औरत की जिन्दगी में जाति का सवाल तब ज्यादा पैदा होता है जब उसकी शादी की बात आती है; क्योंकि गैर बिरादरी में तो शादी के लिए लड़की को ही आगे आना होगा। फिर इस पुरूष प्रधान लोभी समाज में सारे के सारे लड़के चाहे अपने घर में अपने पापा के ऊपर जूता लेकर खड़े हो जाते हों; शादी का जिक्र आते ही दूध पीते बच्चे की तरह पापा-मम्मी के अत्यन्त अनुशासित बालक की भाँति अनुशासित व्यवहार करने लगते है। फिर चाहे दहेज के लिए जो भी शर्तें रखी जाएँ उनमें कुछ शर्तें तो जुड़नी ही हैं कि यह लड़के की अपनी मर्जी है आखिर इसकी खुशी के लिए यह सामान तो चाहिए ही। फिर चाहे जितना ही दहेज मिला हो उसके बाद मेरे ज्यादातर रिश्तेदारों, लड़कियों और सहेलियों को जो ताने तथा अपमान मिले थे; वे भी तो अपनी जाति का ही कोई काम था लेकिन जाति और बिरादरी का सवाल ज्यादा अहम पुरूष के लिए हो जाता है; लड़की और औरत को तो उस चक्की में केवल पिसना ही होता है।

□

आखिर ज्यादातर दोस्त-यार अपनी बिरादरी के थे और रिश्तेदार तो स्वाभाविक रूप से अपनी ही जाति के थे। शुरू-शुरू में कभी कोई निकट का रिश्तेदार अपने बच्चे को गोद लेने की सलाह देता तो कभी कोई दोस्त अनाथालय से बच्चा लेने की बात करता लेकिन सागर की अकूत कमाई और तमाम पुश्तैनी जायदाद का वारिस ढूढ़ने का सबसे अच्छा तरीका अपनी जाति के शुभचिन्तकों को यही लगता था कि सागर की दूसरी शादी कर दी जाए। सागर ऐसा कभी स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहते थे शायद उन्हें अपनी नौकरी के जाने का अंदेशा नजर आता या मेरे अध्यापक होने से उन्हें मुकदमेबाजी का खतरा नजर आता। फिर यह सोचा गया कि अपमान,

उपेक्षा, उदासीनता, संवादहीनता, कभी-कभी चुप्पी और फिर कभी बदतमीजी से भरी हुई बातें शायद अपना असर दिखाएँ और मैं खुद-ब-खुद रास्ते से हट जाऊँ...... समझ में आना मुश्किल है मानव मन की सोच व उसके जटिल तंत्र का। वहीं लोग जो शुरू-शुरू में मेरे भाग्य से ईर्ष्या करते थे मेरे रूप-रंग, शिक्षा-दीक्षा, परिवार-मायका, शादी सभी को देखकर ईर्ष्यालु दृष्टि रखते थे उन्हीं के लिए मैं शायद घृणा या पता नहीं क्या-क्या भावनाओं / दुर्भावनाओं का केन्द्र बन गयी...... लगता ही है कि पूरा का पूरा सागर कहीं चुक गया है। कहीं कोई हरियाली नहीं है। मनोहारी हरीतमा, वर्षा की तो बात ही क्या है यहाँ तो एकदम वीराना है। पूरी की पूरी जिन्दगी अर्थहीन और व्यर्थ सी नजर आती है, कहीं कोई लक्ष्य नहीं, कहीं कोई आशा नहीं सम्बन्धों में कोई गर्माहट नहीं। कभी-कभी मानसूनी बादल जब आसमान में घिर आते हैं तो लगता है जलवृष्टि होगी, कुछ हरियाली आयेगी लेकिन फिर सारी की सारी उम्मीदों पर पानी फिर जाता। पूरी जिन्दगी बिल्कुल निष्फल बंजर...... ऊसर।

□

"पूर्णिमा, देखो तुम्हें क्या सेकेण्ड लेक्चर नहीं लेना है" रजिस्टर और डस्टर हाथ में लिये मैं चुपचाप आँखें मूँदे आराम कुर्सी पर स्टाफ रूम में बैठी थी; अनीता की इस आवाज से मुझे थोड़ा सा जगा सा दिया। हाँ! अनीता क्लास तो लेनी ही है। उधर से जब तक मैं लेक्चर रूम तक पहुँची देखा कि अभी बृजलाल अपना लेक्चर जारी रखे थे। मुझे गेट पर देखते ही उन्होंने लेक्चर समाप्त किया और कहा कि पूर्णिमा जी "आई एम सॉरी" थोड़ा सा ज्यादा खिंच गया आज लेक्चर। यही जो हिस्सा बच्चों को पढ़ाने का होता था यहीं शायद पूरी जिन्दगी का सबसे सकून भरा हिस्सा मेरी जिन्दगी में है। उस दरम्यान न तो मुझे सागर की उपेक्षा और उदासीनता

याद आती थी और न ही सास के कटाक्ष। कालेज में लेक्चर लेते समय अमूमन मुझे उन लड़कियों में से कुछ में अपना चेहरा नजर आता था जो मुझे अनन्य भक्ति भाव से देखती रहती थीं। शायद वे मुझे ज्ञान की देवी या सरस्वती समझतीं थीं। मैं भी पूरी कोशिश करके विद्यार्थियों को समझाती। कभी-कभी यह सोचती अगर यह हिस्सा जिन्दगी में न होता तो शायद मैं कब की चुक गयी होती। विद्यार्थियों के स्नेहिल नेत्रों व उनके आदर से मेरे मन को जो आक्सीजन मिलती थी यह वहीं आक्सीजन थी। जो दिन के आने वाले हिस्से की कार्बन डाई आक्साइड को संतुलित कर सकती थी। लैक्चर खत्म करके स्टाफ रूम में पहुँची तो अनीता अपना लॉकर खोलकर हिन्दी मैगजीन निकाल रही थी जिसमें अनुज की एक कविता छपी थी। कविता लम्बी थी और बहुत अरसे बाद कोई अच्छी कविता देखने को मिली थी।

याद आया अनुज से तो मुलाकात हुए कई महीने हो गये होंगे। मैं यह कैसे भूल सकती हूँ कि अनुज मेरा सहपाठी था और वाद-विवाद प्रतियोगिता में अक्सर मुझसे मुकाबला हो जाता था। लेकिन जब भी जिला स्तर की टीम बनती थी तो अनुज जीत जाता था। प्रतिभाशाली छात्र और अच्छा वक्ता होने के बाद बीमा एजेण्ट का काम करना उसके लिए कैसा होगा यह सोचना मुश्किल नहीं था। आखिर पेट भरने के लिए, परिवार चलाने के लिए कुछ तो करना ही पड़ता है फिर सभी को अच्छी नौकरी नहीं मिल सकती है क्योंकि वैसे ही पढ़े-लिखे हर साल लाखों की तादाद में विश्वविद्यालय से निकल रहे हैं और रोजगार के अवसर हैं कि सिकुड़ते ही जा रहे हैं। अनुज भी कई बार प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठा। दो-एक बार लिखित परीक्षा भी पास कर लिया था; लेकिन नौकरी में आते-आते रह जाता था। घर में कोई पूँजी वगैरह तो थी नहीं कि कुछ व्यवसाय ही कर लेता। आखिर ओवरएज होकर उसने बीमा एजेण्ट का काम शुरू किया था। बचपन से ही कविता लिखना उसका शौक था, जो अब मजबूरी में

तब्दील हो गया था। कितना मुश्किल होता है एक सुयोग्य व्यक्ति के लिए घर-घर, आफिस-आफिस जाकर लोगों को बीमा कराने के लिए समझाना या ग्राहक फँसाना, यह तो कोई अनुज से ही पूछे। बचे हुए समय में उसके बाद परिवार से भी जो समय बचे उसमें शायद कविता लिखना शौक या मजबूरी, जो भी हो, अनुज की ये चीजें थीं जिसके बारे में वह कभी कभार मुझे बता देता था। अनुज से मिलना कम हो पाता था क्योंकि एक तो हिन्दुस्तानी समाज में विवाहिता औरत का किसी दूसरे से (जिससे मिलने का कोई वाजिब कारण न हो) मिलना-जुलना या बातचीत करना, सीधे-सीधे शारीरिक सम्पर्क या भ्रष्टाचार ही समझा जाता है और कुछ भी नहीं। वैसे ही सागर को मेरा अध्यापन का कार्य शुरू से ही अच्छा नहीं लगता था। कभी-कभी खिसियाकर कहता—अरे मेरी इतनी कमाई है, इतनी साधन-सुविधा है तुम बेकार दिन भर गला फाड़ने के लिए चली जाती हो। स्कूल से मिलने वाली तनख्वाह का बड़ा हिस्सा तो तुम्हारे आने-जाने में खर्च हो जाता है, क्या जरूरत है तुम्हें मास्टरी करने की? शायद एक-आध बार उसे यह भी शक हुआ है कि अनुज की कविता की किताब मेरे बुक-सेल्फ में रखी रहती है और अपने सहकर्मी बृजलाल का जिक्र अनायास भी आ जाने पर कुछ अच्छा सा नहीं लगता था। आखिर पुरूष प्रधान समाज में उन्हें कहाँ पूरी आजादी है? और उनके ऊपर कोई शक शुबहे की गुंजाइश तो रहती ही नहीं खासकर पत्नी की तरफ से क्यों होगी? हाँ, अगर पत्नी कहीं काम करती है तो कार्य करने के स्थान पर किसी पुरूष से आवश्यकतानुसार जरूरी बात भी करना शक के दायरे में उसे खड़ा कर देता है और सागर भी तो पुरूष प्रधान समाज का हिस्सा था। लेकिन धीरे-धीरे मैंने जब यह समझना शुरू किया कि बच्चा न होने के कारण मेरी जिन्दगी में जो रिक्तता है, उसकी पूर्ति वैसे तो संभव नहीं है लेकिन अगर यह नौकरी भी मेरे पास नहीं रही तो शायद मैं एकदम समाप्त हो जाऊँगी क्योंकि आशा की कोई किरण कहीं और से नहीं है।

□

सागर बहुत थके हुए से लौटे थे। जो नये विधायक इस बार हुए है वे यह समझते हैं कि पुराने विधायक से सागर की रक्त-रफ्त ज्यादा थी। यद्यपि सागर इसके जीतते ही पाँच किलो मिठाई लेकर माला वगैरह पहना आये थे; लेकिन नये विधायक के जासूसों ने उन्हें आगाह कर दिया था कि यह थानेदार विश्वास करने के काबिल नहीं है, क्योंकि यह पुराने विधायक जी का खासम-खास रहा है। उनके चुनाव में एक गाड़ी का भी बन्दोबस्त इसने किया था। आखिर सागर ठहरा नौकरी पेशा आदमी। घर के अन्दर में वे भले ही समझौता पसन्द न हों। एक दंभ पुरूष और पुरूष दर्प से भरपूर व्यक्तित्व वालों में पता नहीं क्यों विधायकों, नेताओं और अफसरों के सामने जाते ही अद्‌भुत रूप से सामंजस्य की क्षमता आ जाती है। सागर अपने थाने में भी बहुत सद्‌भावपूर्ण माहौल में मातहतों से बातचीत करते थे आखिर वही तो उनके माध्यम होते थे आमदनी कराने के। पैसे का मोह तो उन्हें दरअसल बचपन से ही था लेकिन इस नायाब नौकरी में, जिसमें रूतबा भी है और पैसा भी, अपनी पोलिटकल सेटिंग करने के गुर भी सीख गये। लेकिन नये विधायक से तारतम्य जम नहीं पा रहा था। आज एस० पी० साहब ने उन्हें हल्का सा इशारा किया कि देखो सागर तुम्हारे नये विधायक जी आज आये थे और कह गये हैं कि जल्द से जल्द तुम्हें इस थाने के इन्चार्ज के पद से हटा दिया जाए। आखिर यह थाना तो सबसे ज्यादा आमदनी वाला था। लोग मंत्रियों की सिफारिश लगवाकर इस थाने को पाते थे। पुराने विधायक जी के हार जाने और नये विधायक के जीत जाने से सागर की समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे तारतम्य जोड़े। कुछ सोचकर आखिर शाम को फिर कुछ पत्र-पुष्प लेकर नये विधायक जी के दरबार में पहुँचा।

"का हो सागर कइसे ईहा सलाम मारत हा, जाता काहे नाही अपने

तब्दील हो गया था। कितना मुश्किल होता है एक सुयोग्य व्यक्ति के लिए घर-घर, आफिस-आफिस जाकर लोगों को बीमा कराने के लिए समझाना या ग्राहक फँसाना, यह तो कोई अनुज से ही पूछे। बचे हुए समय में उसके बाद परिवार से भी जो समय बचे उसमें शायद कविता लिखना शौक या मजबूरी, जो भी हो, अनुज की ये चीजें थीं जिसके बारे में वह कभी कभार मुझे बता देता था। अनुज से मिलना कम हो पाता था क्योंकि एक तो हिन्दुस्तानी समाज में विवाहिता औरत का किसी दूसरे से (जिससे मिलने का कोई वाजिब कारण न हो) मिलना-जुलना या बातचीत करना, सीधे-सीधे शारीरिक सम्पर्क या भ्रष्टाचार ही समझा जाता है और कुछ भी नहीं। वैसे ही सागर को मेरा अध्यापन का कार्य शुरू से ही अच्छा नहीं लगता था। कभी-कभी खिसियाकर कहता– अरे मेरी इतनी कमाई है, इतनी साधन-सुविधा है तुम बेकार दिन भर गला फाड़ने के लिए चली जाती हो। स्कूल से मिलने वाली तनख्वाह का बड़ा हिस्सा तो तुम्हारे आने-जाने में खर्च हो जाता है, क्या जरूरत है तुम्हें मास्टरी करने की? शायद एक-आध बार उसे यह भी शक हुआ है कि अनुज की कविता की किताब मेरे बुक-सेल्फ में रखी रहती है और अपने सहकर्मी बृजलाल का जिक्र अनायास भी आ जाने पर कुछ अच्छा सा नहीं लगता था। आखिर पुरूष प्रधान समाज में उन्हें कहाँ पूरी आजादी है? और उनके ऊपर कोई शक शुबहे की गुंजाइश तो रहती ही नहीं खासकर पत्नी की तरफ से क्यों होगी? हाँ, अगर पत्नी कहीं काम करती है तो कार्य करने के स्थान पर किसी पुरूष से आवश्यकतानुसार जरूरी बात भी करना शक के दायरे में उसे खड़ा कर देता है और सागर भी तो पुरूष प्रधान समाज का हिस्सा था। लेकिन धीरे-धीरे मैंने जब यह समझना शुरू किया कि बच्चा न होने के कारण मेरी जिन्दगी में जो रिक्तता है, उसकी पूर्ति वैसे तो संभव नहीं है लेकिन अगर यह नौकरी भी मेरे पास नहीं रही तो शायद मैं एकदम समाप्त हो जाऊँगी क्योंकि आशा की कोई किरण कहीं और से नहीं है।

☐

सागर बहुत थके हुए से लौटे थे। जो नये विधायक इस बार हुए है वे यह समझते हैं कि पुराने विधायक से सागर की रक्त-रफ्त ज्यादा थी। यद्यपि सागर इसके जीतते ही पाँच किलो मिठाई लेकर माला वगैरह पहना आये थे; लेकिन नये विधायक के जासूसों ने उन्हें आगाह कर दिया था कि यह थानेदार विश्वास करने के काबिल नहीं है, क्योंकि यह पुराने विधायक जी का खासम-खास रहा है। उनके चुनाव में एक गाड़ी का भी बन्दोबस्त इसने किया था। आखिर सागर ठहरा नौकरी पेशा आदमी। घर के अन्दर में वे भले ही समझौता पसन्द न हों। एक दंभ पुरूष और पुरूष दर्प से भरपूर व्यक्तित्व वालों में पता नहीं क्यों विधायकों, नेताओं और अफसरों के सामने जाते ही अद्‌भुत रूप से सामंजस्य की क्षमता आ जाती है। सागर अपने थाने में भी बहुत सद्‌भावपूर्ण माहौल में मातहतों से बातचीत करते थे आखिर वही तो उनके माध्यम होते थे आमदनी कराने के। पैसे का मोह तो उन्हें दरअसल बचपन से ही था लेकिन इस नायाब नौकरी में, जिसमें रूतबा भी है और पैसा भी, अपनी पोलिटकल सेटिंग करने के गुर भी सीख गये। लेकिन नये विधायक से तारतम्य जम नहीं पा रहा था। आज एस० पी० साहब ने उन्हें हल्का सा इशारा किया कि देखो सागर तुम्हारे नये विधायक जी आज आये थे और कह गये हैं कि जल्द से जल्द तुम्हें इस थाने के इन्चार्ज के पद से हटा दिया जाए। आखिर यह थाना तो सबसे ज्यादा आमदनी वाला था। लोग मंत्रियों की सिफारिश लगवाकर इस थाने को पाते थे। पुराने विधायक जी के हार जाने और नये विधायक के जीत जाने से सागर की समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे तारतम्य जोड़े। कुछ सोचकर आखिर शाम को फिर कुछ पत्र-पुष्प लेकर नये विधायक जी के दरबार में पहुँचा।

"का हो सागर कइसे ईहा सलाम मारत हा, जाता काहे नाही अपने

पुरनके विधायक के ईहा।" सागर को काटो तो खून नहीं। बोले, "सर! मैं तो आपकी जीत से बहुत खुश हूँ और आपसे एक बार ही मिलने से इतना इम्प्रेस हूँ। आप मुझे मेरे लायक सेवा बताते रहें। मैं तो आपका ही आदमी हूँ।" "हाँ-हाँ तुम मेरे ही आदमी हो इसीलिए तो पुराने विधायक को एक गाड़ी रोज पेट्रोल भरवाकर देते थे चुनाव के लिए। आखिर वह तुम्हारी बिरादरी का भी था। वही तुमको यहाँ इतना दिन रखवाया। अब हमारी सरकार है हम अपनी जाति का कोई आदमी लायेंगे। तुम्हारे जैसे लोगों की हमें अब बिल्कुल जरूरत नहीं है। अब तुम अपने लिए कोई और जगह तलाश करो।"

फिर भी मान-अपमान को ताक पर रखकर सागर ने नये विधायक जी के दरबार में आधे-घण्टे तक हें-हें करके टाईम पास किया और बहुत दुखी मन से घर लौटे थे।

वैसे तो सागर अक्सर घर आने पर कड़कती हुई आवाज में चीख-पुकार मचा देते थे पर आज गुमसुम से बैठे रहे। मैंने खाने को पूछा तो बोले–'अब तुम्हारे मन का सब हो जाएगा। जब से मैंने तुमसे शादी की है मुझे सुख नहीं मिला। यहाँ अच्छे थाने में लगा था अब तुम्हारी बददुआएँ वहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रही हैं। नये विधायक ने आज मेरी बहुत बेइज्जती की है। समझ में नहीं आता कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ?'

सामान्य तौर पर दो दुखी लोग अगर मिल जाएँ तो सहानुभूति आपस में होनी चाहिए। आखिर बच्चा मेरे नहीं था। मैं माँ होने से वंचित हो रही थी तो सागर पिता होने से। लेकिन दोनों की जिन्दगी में एक-एक रास्ते ऐसे थे जिनसे उन्हें सुकून मिलता था। मुझे अपने स्कूल में बच्चों को पढ़ाकर, बृजलाल और अनीता से राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय, सामाजिक आर्थिक सन्दर्भों पर चर्चा करके, कभी अनुज की कविताओं को पढ़कर तो कभी अनुज से बातचीत करके सुकून मिल जाता था तो सागर अपने थाने में ज्यादा उगाही करने में सन्नद्ध रहते थे। वे तो पुराने सारे समयों के रिकार्ड

तोड़ देना चाहते थे और उन्हें इसी में सुकून मिलता था। शायद उन्हें लगता है कि अगर दूसरी शादी न हो पायी, वो भी सरकारी नौकरी में होने से दूसरी शादी करने के कारण, नौकरी छूटने के भय से। फिर बुढ़ाई में पैसा ही तो साथ रहेगा।

लेकिन आज नये विधायक जी के आक्रामक रवैये से एस० पी० साहब की बताई बात की पुष्टि हो जाने के बाद भी सागर मेरी ओर झुके नहीं। मेरी ओर सहानुभूति का हाथ तक नहीं बढ़ाया, उलटे सारी बातों के लिए मुझे ही कोसने लगे।

ऐसा नहीं है कि सागर की अकूत कमाई की जानकारी परिवार वालों को और रिश्तेदारों को न हो। इसीलिए शुरू-शुरू में और कभी-कभी अब भी रिश्ते नाते के लोग अपने छोटे बच्चों को गोद लेने का आग्रह करते। घर बड़ा सूना लगता है, बच्चा अपने पास रख लो, घर में तुम दोनों का मन लगेगा। लेकिन मेरी चुप्पी से वे सारी बातें कट जाती थीं। आखिर किराये का मातृत्व कितने दिन चलेगा। कभी न कभी तो मुझे अपने खून की पुकार होगी क्योंकि औरत का न तो ओढ़े हुए प्रेम से काम चल सकता है और न ही किराये के मातृत्व से। मन कभी-कभी दौड़कर भागने को करता है। मैं पूरी सीमा रेखा को तोड़कर भागने का यत्न करती हूँ। जिसे लोग परिवार का ढाँचा कहते हैं उसी ढाँचे के लिए और बहुत जरूरी होता है और शायद कभी अपने वारिस की सोच में तो कभी शायद अपनी ख्याति में, सागर दोनों हाथ से लूटने के चक्कर में पड़ जाते थे और रिश्तेदारों-दोस्तों की ईर्ष्या-जलन के बीच में से अपनी पोलीटकल सेटिंग के कारण अकसर सफल भी रहते थे। वही सम्पत्ति और आमदनी, जो सागर के लिए मोह आशा की किरण थी। रिश्तेदारों की लोलुप दृष्टि से वे चौकन्ने भी रहते लेकिन कभी उन्होंने यह नहीं सोचा कि पूर्णिमा की नियति क्या है? उसकी जिन्दगी के कुछ ऊसूल हैं जिनके लिए वह अध्यापन का काम कर रही है।

यह सारी बातें तब ज्यादा बेहतर सोची जा सकती थीं जब कि केवल

मैं और सागर साथ रह रहे होते। सास और ससुर को अन्य भाई लोग अपने साथ नहीं रखना चाहते थे। वे लोग पहले तो इस बहाने पर हमारे साथ रहे कि दोनों जन नौकरी करते हैं तथा हम घर की देखभाल करेगें। फिर यहाँ सागर की अकूत कमाई से रोज मेवे इत्यादि का सेवन होता था, उत्तम कोटि का भोजन मिलता था, मुर्ग-मुसल्लम भी हासिल हो जाता था, अक्सर मिठाई के डिब्बे आते थे। आखिर बुढ़ाई में आदमी एक बार फिर बच्चे सा हो जाता है। चाहे डायबटीज हो तो भी मिठाई देखकर जीभ नहीं मानती; सुस्वादु व्यंजनों का लोभ कैसे छूट सकता है। अब सागर की पूरी कमाई जो घर में आती थी उसका एक हिस्सा सास और ससुर खुद आराम से उपभोग करते थे। चटकारे लेकर खाते और मेरे निन्दा रस में सराबोर रहते–इसको क्या नौकरी करने की जरूरत है। मेरा बेटा इतना लायक है कि रुपये की बरसात घर में होती रहती है इसको मास्टरी करने की क्या जरूरत है। आखिर औरत को चाहिए क्या—कपड़ा-लत्ता, गहना, गुरिया और पैसा। सब कुछ तो सागर के पास है। इसको चाहिए कि हम लोगों की सेवा और हमारी वंश परम्परा के लिए कुछ सन्तान दे सके लेकिन यह तो कुछ भी नहीं दे सकती; आखिर बाँझ है न। जैसे बंजर जमीन में कुछ भी नहीं उग सकता; वैसे ही ये हमारे वंश के लिए एकदम बेकार है। और बाँझ में तो दया भी नहीं होती। बाल-बच्चेदार औरतों के मन में जो अच्छी भावनाएँ होती है वे बाँझ में कहाँ। ये सारे डायलाग बार-बार अनेक तरीकों से रिपीट हो चुके हैं और मुझे वे अपने लेक्चरों से ज्यादा याद हो चुके हैं। शायद इसीलिए कभी-कभी मुझे अनुज की कविता की वे लाइने नहीं भूलती कि—

हे ऊसर तुम तब भी रहोगे जब कुछ होगा,
और तुम तब भी रहोगे जब कुछ नहीं होगा।

आखिर खतरा किसको होता है जिसके पास कुछ होता है। मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। अगर एक बच्चा होता तो शायद सागर भी मुझे इतनी उपेक्षा

या उदासीनता से न देखते या अगर उपेक्षा भी करते तो मैं शायद उस बच्चे में खो जाती। सास, ससुर और रिश्तेदारों के उन दुष्चक्रों का तो प्रश्न ही नहीं उठता, जिनके तहत वे दूसरी शादी की बात करते हैं। आज अगर मैं बृजलाल या अनुज से बैठकर कुछ देर या अनीता से ही कोई दुख-सुख की बात करूँ तो तुरन्त दूसरे दिन स्टाफ-रूम में कानाफूसी होने लगती है और शायद कोई सागर को कहीं न कहीं से कुछ कह देता है जिससे शायद उनकी आवाज की कड़क कुछ और बढ़ जाती है। सन्तानहीन होना क्या छिनाल होने के बराबर है। कोई औरत जिसके बाल-बच्चे हों अगर किसी से बात करती है तो शायद बात करने का विषय बच्चे की पढ़ाई-लिखाई, दवा-दारू या भविष्य की योजनाएँ होती हैं। सन्तानहीन औरत जब किसी दूसरे पुरुष से बात करेगी तो दुनिया की नजर में केवल बात का यही विषय हो सकता है कि तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो या फिर वही पुरुष और स्त्री का शाश्वत सम्बन्ध। सम्बन्ध जो कि सभी नगरों और गाँवों में किसी भी सुन्दर स्त्री को, अगर वह सन्तानहीन हुई, किसी से बात करते देख लेने मात्र से पुरुष जाति को उसमें अनैतिकता की बू आने लगती है।

मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है कि औरत की तीन प्रकार की जिन्दगी बहुत मुश्किल है, एक तो एकाकी औरत दूसरी विधवा और तीसरी बाँझ औरत। अकेली औरत जिसकी शादी न हुई हो और अकेले रहती हो, उसके चरित्र पर संदेह उठाना बड़ा आसान है। दुनिया की नजर में वह सर्व-सुलभ सी हो सकती है। लेकिन उसे एक विवाहित और परिवार वाली औरत के दर्द का अंदाजा शायद न होता हो। दूसरी उस औरत की जिन्दगी तकलीफों से भरी होती है जिसमें कोई औरत विधवा हो जाती है और भारतीय समाज में विधवा के लिए तो सभी सुख वर्जनीय हैं। रंगीन साड़ी भी नहीं पहन सकती। किसी मर्द से बात करने पर सीधा-सीधा मतलब यौनेच्छा माना जा सकता है। किसी शुभ अवसर पर उसकी मौजूदगी संकट का कारण बन सकती है। यानी अकेली औरत और विधवा स्त्री दोनों की

नियति बहुत दुख भरी है। कभी-कभी सोचती हूँ कि मैं अगर इनमें से कोई एक होती तो शायद आज से तो बेहतर ही होती। आज मैं अकेली भी नहीं हूँ। मेरे पति हैं, मेरे सास-ससुर मेरे साथ रहते हैं लेकिन फिर भी मैं निपट अकेली हूँ। पति के रहते हुए एकाकीपन का आभास कितना दर्दनाक हो सकता है यह शायद मैं समझ सकती हूँ। आखिर बच्चा न हो, न तो मैंने चाहा था न चाहती हूँ और न ही यह मेरे अकेले के हाथ में है। फिर मेरे साथ ऐसा सलूक क्यों? क्या वे सारे लेखक और कवि जिन्होंने आदमी और औरत के रिश्ते को लेकर बहुत सारा साहित्य गढ़ा है, अकेली औरत के ऊपर बहुत सी कविताएँ लिख डाली हैं, विधवा जीवन पर उपन्यास रच डाला है, मेरी नियति पर भी कुछ सोचेगें कि बंजर-ऊसर जमीन जैसी जिन्दगी जीना कौन सी त्रासदी से कम है।

आज सबेरे भइया आये थे। भइया मुझे जब भी बुझा-बुझा सा देखते हैं मुझे जीवन के प्रति उत्साहित करते हैं। उनके पास एक ही फार्मूला है पी० एच० डी० कर लो, यूनिर्वर्सिटी में लेक्चरर लग जाओगी या कभी कहते हैं मम्मी और पापा के साथ कुछ दिन रह लो; हम लोगों के साथ रहकर तुम्हारा मन बदल जाएगा। जो भगवान को मंजूर है उसके आगे तो कुछ होता नहीं। भइया की वे दुनियादारी की बातें मुझे कोई खास संतोष नहीं दे पातीं और भइया भी तो उलझे रहते हैं, अपनी ही परेशानियों में। चार बेटियाँ हो गई हैं। बड़ी बेटी अब शादी कीं उम्र के आस-पास पहुँच गई है; भइया भी एक सरकारी आफिस में क्लर्क लगे हैं। मँहगाई के जमाने में उनका कुछ बचता है नहीं। चार-पाँच बेटियों की शादी कैसे करेगें इसी सोच में डूबे रहते हैं। जब कभी अपने चक्रव्यूह को तोड़ कर निकल पाते हैं, तो मेरे घर आते हैं जान-बूझकर ऐसे समय में, जब सागर न हो। क्योंकि सागर से उनका मानसिक तारतम्य शुरू से ही नहीं बन पाया है। सागर हमेशा अपनी वरदी के रुआब में रहते हैं और चाहते हैं कि जैसे आफिस में उनके मातहत उन्हें सलाम करते हैं, उन्हें लोग विशेषकर ससुराल पक्ष वाले

भी, सलाम करें। भइया की परेशानी उनकी चेहरे को देखकर पढ़ी जा सकती है। कई-कई रोज दाढ़ी नहीं बनाते। शायद सोचते हैं; कुछ पैसा ही बच जाएगा। ससुराल से भइया स्कूटर भी पाये थे शादी में। अब जब से पेट्रोल का दाम बढ़ा है स्कूटर रख दी है और उठा ली है पुरानी पापा वाली साईकिल। अधेड़ से उम्र में आधे बूढ़े से दिखते भइया, कभी-कभी जब आ जाते हैं, बहुत कोशिश करते हैं कि मैं सामान्य हो जाऊँ। उनके फार्मूले में से कोई एक फार्मूला मान लूँ। यानि पी० एच० डी० कर लेक्चरर बनने के ख्वाब देख सकूँ या कुछ दिन मन बदलने के लिए उन लोगों के साथ रहूँ। दोनों बातों के पीछे भइया की यही मंशा रहती है कि मैं अपने वर्तमान से कुछ कट सकूँ और लेक्चरर बनने का ख्वाब देखकर मैं अपने में कमी को भूल सकूँ। जिस कमी की वजह से मेरा पति मेरा नहीं; मेरे सास-ससुर-सम्बन्धी शत्रुवत् से हो गये हैं। मैं खुद लक्ष्यहीन सी हो जाती हूँ, उन सारी स्थितियों से बचकर कोई ऐसा रास्ता भइया दिखाना चाहते हैं जिसमें, जो काँटे मेरे लिए हैं, वे न रहें।

भइया भी क्या करें? दूसरी बहन के यहाँ तो जाते ही नहीं क्योंकि वह अब अपने आप में इतनी मशगूल हो गई है कि उसे दुनियाँ में कहीं कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। मेरे पास आते हैं तो भइया अपनी तरफ से यह कोशिश भी करते हैं कि मुझे कुछ सांत्वना मिल सके। लेकिन अक्सर तो मुझे ही उन्हें ढाढ़स बधाना पड़ता है। आखिर अपनी बेटियों के शादी की लिए फिर वहीं पर तलाश शुरू करेंगे भइया, जहाँ से पापा ने मेरे लिए शुरू की थी। पता नहीं क्या होगा उस बेटी का भविष्य, मैं नहीं जानती।

हर मर्द की कौवे जैसी आँखें गड़ जाती हैं उस अकेली औरत के ऊपर जिसका या तो पति नहीं होता (चाहे अकेली औरत हो चाहे विधवा हो) या चाहे जिसके औलाद नहीं हुई है। और एक कोशिश तो सभी करते ही हैं अपने मन के छिनालपन को खोलने का उस औरत के सामने और जब अक्सर अनुकूल उत्तर नहीं मिलता तो फिर कहानी गढ़ी जाने लगती है उस

अकेली औरत के लिए या औलादहीन औरत के लिए। बिना औलाद की औरत की ज़िन्दगी में सब कुछ होते हुए भी सब कुछ नहीं होता। महासागर पर कोई जलयान तैर रहा है और पीने के लिए पानी की एक-एक बूँद की कमी है। क्योंकि महासागर से तो प्राण रक्षक जल नहीं मिल पायेगा। यहाँ तो केवल सागर है। इसका जल ठहर गया है। उदासीन है। कहीं कोई निर्गत नहीं है। कोई अच्छी भावना प्रवेश नहीं करती। कोई नहीं है, केवल और केवल वरदी रहती है। आखिर मर्द भी क्या करे उसे तो एक वंश परम्परा का निर्वाह करने वाला चाहिए। उसे पति और पत्नी के बीच में झूला चाहिए।

.... चारों तरफ गरम आँधियाँ चल रही हैं झंझावात आ रहे हैं और इस ऊसर-बंजर में मैं अकेली। सब कुछ मेरे ही चारों तरफ मंडरा रहा है क्योंकि इस धुँए और गरम हवाओं के लिए मुझसे ज्यादा कोई उपयुक्त लक्ष्य नहीं है।

□□
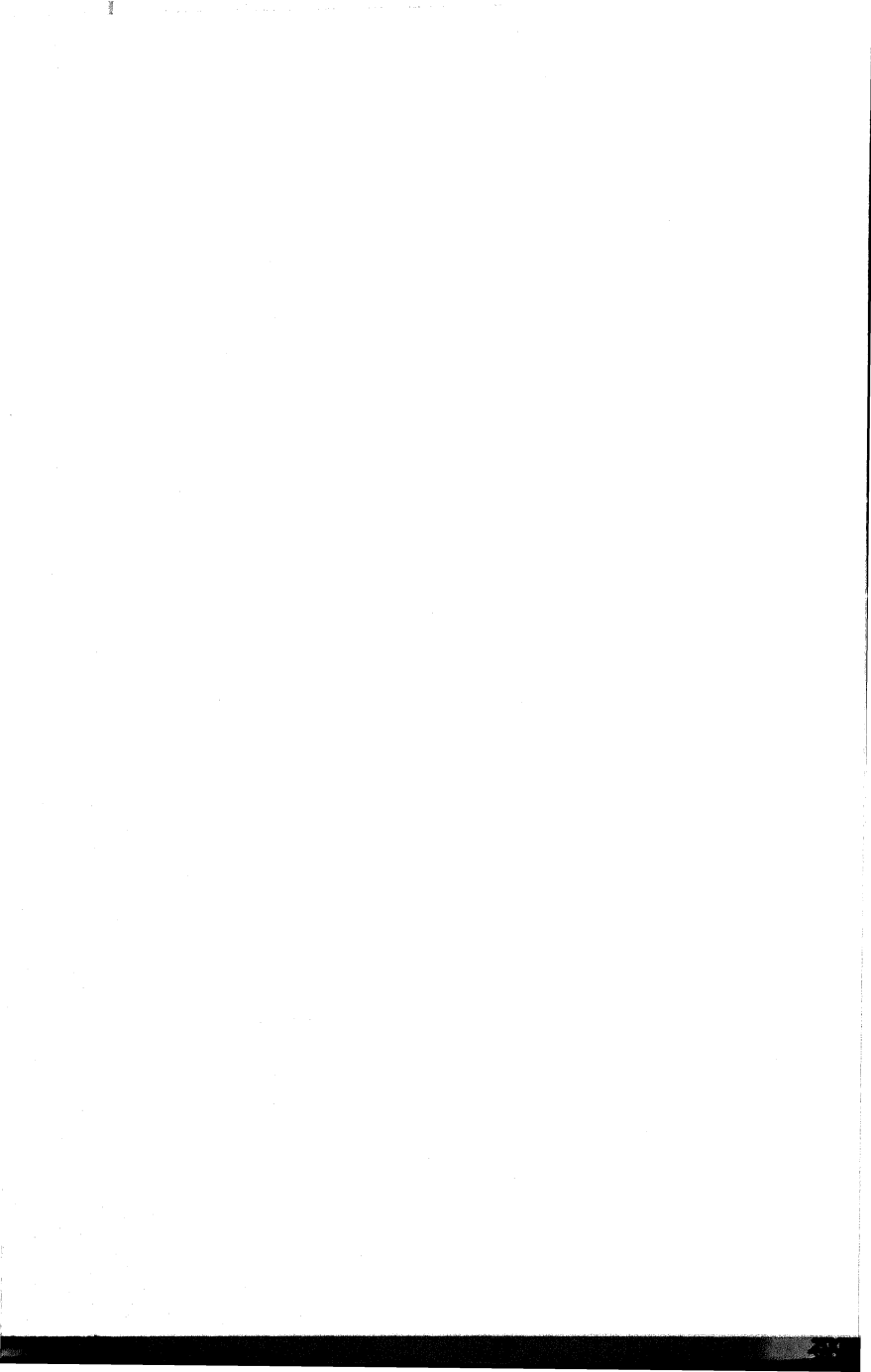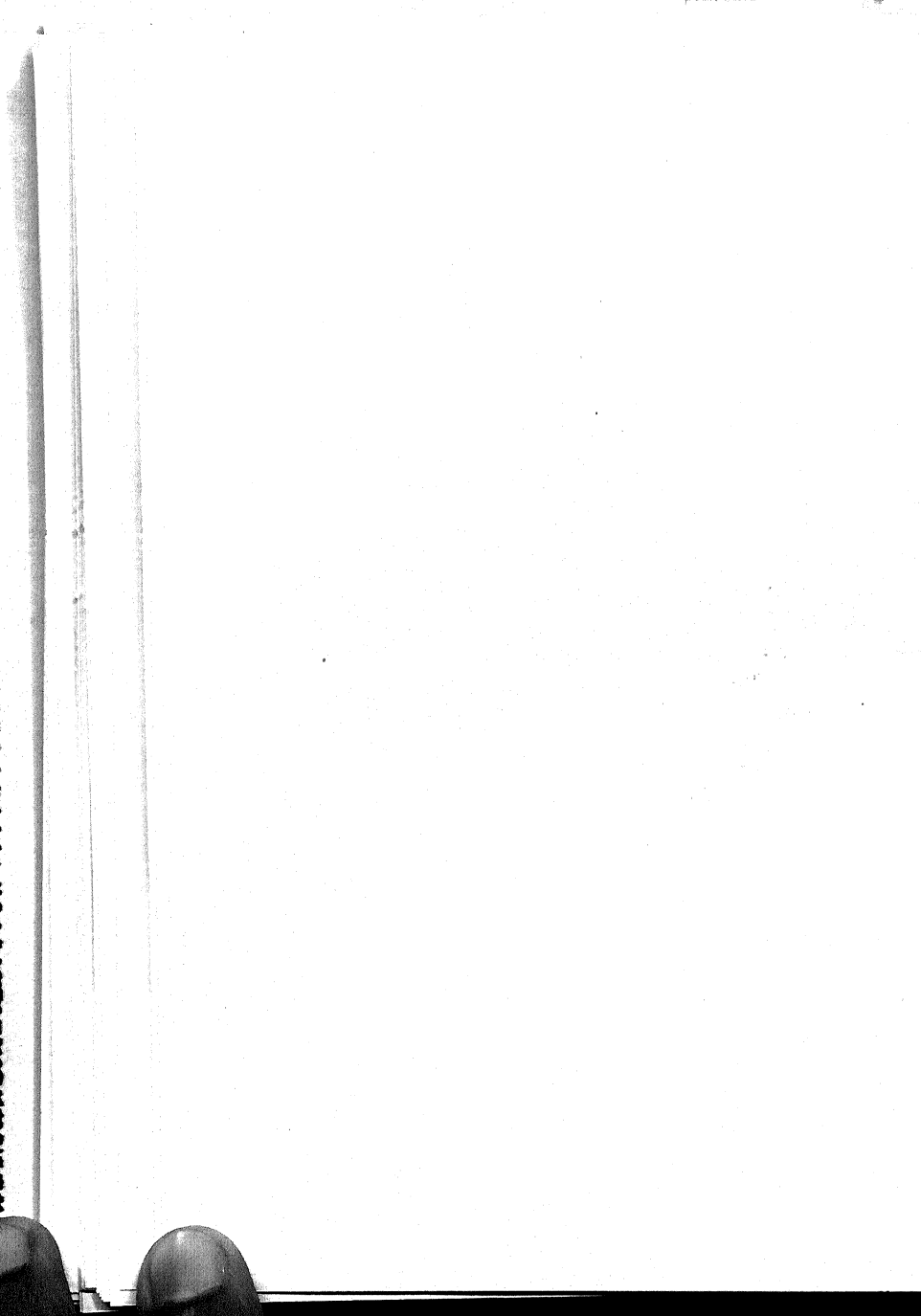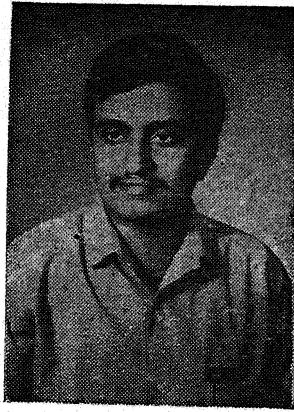
ओम प्रकाश मिश्र

जन्म : 1957, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) के एक गाँव में।

शिक्षा : एम० ए० (अर्थशास्त्र), इलाहाबाद विश्वविद्यालय से।

अनुभव : इलाहाबाद विश्वविद्यालय में 5 वर्ष से अधिक समय तक अध्यापन।

प्रकाशित : कविताएँ / कहानियाँ :
'कथ्य-रूप', 'साहित्यनामा', 'संबोधन', 'कथानक', 'उन्नयन' तथा 'वर्तमान-साहित्य' में प्रकाशित।
उपन्यास : 'दस साल बाद' (1990)
कविता संग्रह : 'चालीस साल का सफर' (1991)।

वर्तमान : अखिल भारतीय सिविल सेवा परीक्षा के माध्यम से भारतीय रेलसेवा में अधिकारी।

सम्पर्क : 2 / बी, एस० एन० मार्ग, रेलवे अस्पताल के पास, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)।